महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,*
*सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।*
*संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,*
*धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

**वर्ष : ६३ अंक : ०८**
दयानन्दाब्द: १९७
विक्रम संवत्: चैत्र शुक्ल २०७८
कलि संवत्: ५१२२
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२२

**सम्पादक**
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

**प्रकाशक**- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

**मुद्रक**-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

**परोपकारी का शुल्क**
**भारत में**
**एक वर्ष**-३०० रु.
**पाँच वर्ष**-१२०० रु.
**आजीवन ( १५ वर्ष )** -३००० रु.
**एक प्रति** - १५/- रु.
**विदेश में**
**वार्षिक**-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
**द्विवार्षिक**-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
**त्रिवार्षिक**-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
**आजीवन** (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
**एक प्रति** - ३ पाउण्ड
**एक प्रति** - ४ डॉलर

**वैदिक पुस्तकालय :** ०१४५-२४६०१२०
**ऋषि उद्यान :** ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

# i jki dkjh

## अप्रैल द्वितीय २०२१

## अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| ०१. वाल्मीकि के राम | सम्पादकीय | ०४ |
| ०२. अग्नि सूक्त-०४ | डॉ. धर्मवीर | ०८ |
| ०३. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य | | १० |
| ०४. कुछ तड़प-कुछ झड़प | प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' | ११ |
| ०५. आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रचार... | पं. शिवकुमार शास्त्री | १६ |
| ०६. जीवन जीने का वैदिक मार्ग | कन्हैयालाल आर्य | १९ |
| ०७. सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर... | डॉ. रामप्रकाश वर्णी | २३ |
| ०८. पञ्चमहायज्ञों का पञ्चकोषों से... | जयप्रकाश आर्य | २६ |
| ०९. संस्था-समाचार | ब्र. रोहित | २९ |
| १०. संस्था की ओर से... | | ३१ |
| ११. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति | | ३४ |


www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

**उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ**
**www.paropkarinisabha.com→gallery→videos**

*'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।*
*किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।*

# वाल्मीकि के राम

आदिकवि वाल्मीकि रामायण में लिखते हैं कि वनवास से लौटने पर श्रीराम के राज्य ग्रहण करने के बाद रामराज्य में जन-जन की वाणी में राम ही राम के नाम की चर्चा रहती थी। प्रतीत होता था जैसे सारा जग राममय हो गया है-

**रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।**
**रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति।।**

(युद्धकाण्ड १२८/१०२)

वर्तमान में भी चहुं ओर राम के नाम की चर्चा है, किन्तु वह रामराज्य की नहीं अपितु श्रीराम के मन्दिर की चर्चा है। राम के चरित्र की नहीं, राम के चित्रों और मूर्तियों की है। राम के चरित्र के अनुकरण की चर्चा नहीं, श्रीराम के नाम के बहाने राम की कल्पित कथाओं और मनोरंजक गीतों की चर्चा है। वह चर्चा वाल्मीकि के राम के मन्दिर की नहीं है और न ही वाल्मीकिप्रोक्त राम के चरित्र की है। वह तो परवर्ती कवियों की कल्पना के राम की है। आदिकवि वाल्मीकि ने राम का ऐसा अद्‌भुत और आदर्श-चरित्र प्रस्तुत किया कि आधा विश्व राममय हो गया। जितने व्यापक राम हुए उतना ही उन विषयक लेखन हुआ। कुछ पक्ष में कुछ विपक्ष में। कुल मिलाकर तीन-सौ के लगभग रामचरित लिख दिये गये। जितने रामचरित लिखे जाते रहे उनकी कल्पना की धूल में आदिकवि की रामकथा का मौलिक स्वरूप धूमिल होता गया। स्वयं मुनि वाल्मीकि की रामायण भी कालक्रम से परिवर्तित एवं परिवर्धित होकर चमत्कारों का भण्डार बनती गयी। आज आदिकवि की वर्तमान रामायण में ही 'आदिरामायण' की खोज करनी पड़ रही है।

वाल्मीकि ऋषि और नारदमुनि के राम तो 'नर' थे, कल्पित 'नारायण' नहीं; मर्यादापुरुषोत्तम थे, कथित लीलापुरुषोत्तम नहीं। वे अदृश्य-अचिन्त्य भगवान् नहीं थे, वे तो प्रजा के बीच रचे-बसे प्रजा के सुख-दु:ख के सहभागी थे। वे मन्दिर में शोभायमान पूजा की वस्तु नहीं थे, वे मानवसुलभ अनुभूतियाँ रखनेवाले महामानव थे। वाल्मीकि से परवर्ती कवियों और कथित श्रद्धालुओं ने श्रीराम को भगवान् एवं पूजा का व्यक्तित्व बनाकर जनसाधारण से इतना अधिक विलग कर दिया जिससे वे अनुसरण के पात्र न रहकर आरती के पात्र बनकर रह गये। महर्षि वाल्मीकि ने ऐसा कभी नहीं चाहा था। उन्होंने तो चाहा था कि मैं ऐसे आदर्श नायक का चरित्र-चित्रण करूँ जिसका अनुकरण करके आदर्श व्यक्ति का निर्माण हो, आदर्श परिवार का संगठन हो, आदर्श समाज का संघटन हो और आदर्श राष्ट्र की संस्थापना हो। कल्पनाओं ने एक अपूरणीय क्षति यह कर दी कि श्रीराम की ऐतिहासिकता को विनष्ट करके उसे चमत्कारिक नायक की परिधि में डाल दिया। तार्किकता को समाप्त करके उसको आस्थामात्र का विषय बना दिया। केवल आराध्य कोटि में लाकर उनकी प्रखर धनुर्धरता और शस्त्रास्त्रों की धार को कुण्ठित कर दिया। कल्पनाओं से गढ़ा गया श्रीराम का स्वरूप वास्तविक और वाल्मीकि का अभीष्ट स्वरूप नहीं है। श्रीराम अवतार-पुरुष नहीं थे, उनको अवतार मानना ऋषि वाल्मीकि की मान्यता के विरुद्ध है। यह वही अन्धविश्वासी स्वरूप है जिसने इस भारतभूमि पर एक हजार वर्ष पूर्व सोमनाथ के मन्दिर को तुड़वाया था, काँगड़ा के मन्दिर जैसे अनेक मन्दिरों को लुटवाया था, हजारों अन्य मन्दिरों को धराशायी कराया था। अत: हमें आज इस विषय पर चिन्तन करने की जरूरत है और उससे भी आगे बढ़कर चेतने की भी सख्त जरूरत है। कहीं भविष्य में इतिहास फिर अपने आपको दोहरा न दे!!!

वाल्मीकि-रामायण का आरम्भ एक आदर्श 'नर' की जिज्ञासा से होता है और मुनि नारद भी उसका उत्तर देते हुए आदर्श 'नर' राम का परिचय प्रस्तुत करते हैं (**रामो नाम जनैः श्रुतः**, बालकाण्ड १/८)। नारद कहते हैं कि वह जो राम है वह विष्णु या नारायण का अवतार नहीं है, अपितु पराक्रम और वीरता में विष्णु के सदृश है (**विष्णुना सदृशो वीर्ये**, बाल. १/१८)। तुलना भिन्न व्यक्ति से भिन्न की हुआ करती है। मुनि वाल्मीकि विष्णु को भिन्न

उदाहरण-पुरुष मानकर उनसे राम की तुलना करते हुए कहते हैं कि राम राक्षसों से सीता को ऐसे छीन लायेंगे जैसे विष्णु ने दैत्यों से राज्यश्री छीन ली थी (सुन्दर. २१/२८)। तुलना करने मात्र से उपमेय व्यक्ति उपमान का अवतार नहीं बनता, क्योंकि वाल्मीकि ने अन्यत्र विष्णु के पराक्रम की लक्ष्मण, हनुमान्, रावणपुत्र इन्द्रजित्, राक्षसवंशी कुम्भकर्ण, राक्षसवंशी त्रिशिरा, वानरवंशी नील आदि के पराक्रम से भी तुलना की है। उससे वे विष्णु के अवतार नहीं बन जाते हैं। विष्णु स्वयं में भी कोई अवतार नहीं थे। वे ऋषि कश्यप और अदिति के सबसे छोटे, किन्तु सबसे पराक्रमी पुत्र थे। उनके वंश को आदित्य और देववंश कहा जाता है। इस प्रकार विष्णु के जैविक पिता-माता ऋषि कश्यप और अदिति थे, जबकि राम के जैविक पिता-माता दशरथ-कौशल्या थे। सृष्टि-प्रक्रिया का अटल नियम यह है कि किसी दूसरे जैविक पिता का अंश किसी दूसरे के पुत्र में प्रवेश नहीं कर सकता। इस सृष्टिनियम के अनुसार राम विष्णु के अंशावतार सिद्ध नहीं होते। दैत्यवंशी राजा बलि को बड़ा भाई देवराज इन्द्र भी नहीं हरा सका था, किन्तु विष्णु द्वारा उसको पराजित करने का पराक्रम करने के कारण श्रद्धालुओं ने विष्णु को अवतार कल्पित कर लिया। वस्तुतः वह एक वीर महापुरुष था।

यदि उपमा के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालें तो संख्याएँ बताती हैं कि वाल्मीकि ने राम की उपमाएँ विष्णु से अधिक देवराज इन्द्र से दी हैं। आँकड़ों के आधार पर तो राम को इन्द्र का अवतार कहा जाना चाहिये था। अन्य कुछ उपमाएँ रुद्र, शिव, त्र्यम्बक और काल से भी दी हैं। प्रसंगवश एक बिन्दु का स्पष्टीकरण करना बहुत ज्ञानवर्धक होगा। विष्णु का एक अन्य नाम 'नारायण' भी है। रामायण के प्रक्षिप्तांशों को छोड़ सम्पूर्ण रामायण में वाल्मीकि ने कहीं भी राम की तुलना नारायण नाम के द्वारा नहीं की है, जबकि एक स्थल पर हनुमान् के और एक अन्य स्थल पर कुम्भकर्ण के पराक्रम की नारायण नाम के द्वारा तुलना की गयी है। विष्णु के नाम से तुलना करने मात्र से यदि राम को विष्णु का अवतार कहा जाये तो इस आधार पर तो अवतारवादियों द्वारा हनुमान् और कुम्भकर्ण को विष्णु का अवतार घोषित करना चाहिये। स्पष्ट है कि राम के विष्णु-अवतार की कल्पना महर्षि वाल्मीकि-सम्मत नहीं है।

यद्यपि महर्षि वाल्मीकि ने अनेक गुणों का सागर होने के कारण श्रीराम को महर्षिकल्प, ऋषितुल्य, धर्मात्मा, महात्मा, महानुभाव, विदितात्मा, देवता आदि कहकर सम्मान दिया है, तथापि राम स्वयं को साधारण मनुष्य मानते हैं तथा शोक-विलाप, सुख -दुःख, लाभ-हानि, क्रोध, अशान्ति, पश्चात्ताप, पूर्वजन्म के कर्म-विपाक आदि भावों की सहज अनुभूति भी करते हैं। राम स्वीकार करते हैं कि मैं एक सामान्य मनुष्य मात्र हूँ और मुझे अपने पूर्वापर जन्मों का कोई ज्ञान नहीं है-

**आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।**
**सोहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे।।**

(युद्ध. ११७/११)

राम मानव सुलभ सहज भाव से यह भी स्वीकार करते हैं कि मुझ पर और मेरे कारण सीता तथा लक्ष्मण पर जो दुःख, कष्ट, विपत्तियाँ आयी हैं, वह मेरे इस जन्म या पिछले जन्मों के किन्हीं दुष्कर्मों का ही फल है-

**किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि।।**

(युद्ध. २०१/१९)

**पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि**
**पापानि कर्माण्यसकृत्-कृतानि।**

(अरण्य. ६३/४)

**नास्तिअभाग्यतरो लोके मत्तोऽस्मिन् स चराचरे।**

(अरण्य. ६७/२६)

मैंने निश्चित रूप से पिछले जन्म में बहुत पाप किये हैं, मुझसे अभागा दुनिया में और कोई नहीं है। ऐसी अनुभूतियाँ, अभिव्यक्तियाँ और स्वीकार्यता किसी ईश्वर या ईश्वर के अवतार की नहीं होतीं। हाँ, उदारमना मर्यादापुरुषोत्तम व्यक्ति की अवश्य होती हैं और ऐसे व्यक्ति राम हैं।

वेदों और वैदिक ग्रन्थों में वेदों को अपौरुषेय अर्थात् किसी पुरुष द्वारा नहीं, किन्तु ईश्वरप्रोक्त माना गया है। **राम वेदों के प्रोक्ता नहीं हैं, अतः वे ईश्वर नहीं हैं, अपितु वे वेदों के केवल अध्येता हैं। अतः राम ईश्वर या ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते।** दूसरा तर्क यह है कि ईश्वर सर्वज्ञ होता है, उसको किसी से ज्ञानप्राप्ति की

आवश्यकता नहीं होती। किन्तु **राम ने एक सामान्य विद्यार्थी की तरह ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर वेदों, वेदांगों और धनुर्वेद आदि शास्त्रों का अध्ययन किया था, अतः राम न तो सर्वज्ञ ईश्वर थे और न ईश्वर का अवतार।**

अयोध्या में राम के मन्दिर के निर्माण की सार्थकता तभी है जब वहाँ राम और उनके भाइयों को वेदों का अध्ययन करते हुए वैसे चित्रित किया जाये जैसे वे वशिष्ठ के आश्रम में पढ़ते थे। राम की शिक्षा और विद्वत्ता की जानकारी देते हुए वाल्मीकि लिखते हैं-

**चरितब्रह्मचर्यस्य विद्यास्नातस्य धीमतः।**

(अयोध्या. ८२/११)

**सर्वविद्याव्रतस्नातो यथावत् सांगवेदवित्।**

(अयोध्या. १/२०)

अर्थात् राम ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर विद्या पूर्ण करके स्नातक बने थे। वे वेद-वेदांगों के विद्वान् थे और उन्होंने सब विद्याओं को विधिवत् पढ़ा था।

हिन्दी और सनातन जगत् में रुचिपूर्वक पढ़े जानेवाले 'रामचरितमानस' में गोस्वामी सन्त तुलसीदास संसारसागर से जहाज के समान पार उतारनेवाले चार वेदों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करके उनकी वन्दना करते हैं (**बन्दउं चारिउ वेद भव बारिधि बोहित सरस**, बाल. १४)। फिर बताते हैं कि रामजन्म के हर्ष के समय दशरथ के महल में वेद-मन्त्रों का गान हो रहा था (**भवन बेदधुनि अति मृदु बानी**, बाल. १९४/४)। वेदाध्ययन करते समय राम को वेद इतने प्रिय लगते थे मानो उनके प्राण हों (**जाकी सहज स्वास श्रुति चारी**, बाल. २०३/३)

**वह कितना सुन्दर दृश्य होगा, यदि अयोध्या के निर्माणाधीन राममन्दिर में एक सुन्दर यज्ञवेदी का निर्माण करके, उसमें सन्ध्या-यज्ञ करते हुए सीता, राम, राम की माताओं, पिताश्री और उनके सभी भाइयों का प्रस्तरदृश्यांकन किया जाये।** यह राम-कालीन संस्कृति-सभ्यता का गौरवशाली चित्र कहा जायेगा। यदि ऐसा चित्र अंकित नहीं किया जायेगा तो वह वाल्मीकि के राम के चरित्र-चित्रण की अपूर्णता समझी जायेगी और वह रामायण के कथ्य की उपेक्षा मानी जायेगी। राम आस्तिक थे। आस्तिक जन अपने आराध्य ईश्वर में दृढ़ आस्था रखते हैं और उसकी उपासना किया करते हैं। राम निराकार ईश्वर को अपना उपास्य मानते थे और सायं-प्रातः सन्ध्या-यज्ञ के माध्यम से उसकी उपासना करते थे। वाल्मीकि राम और राम के परिवार की उपासना-पद्धति की जानकारी देते हुए माता कौशल्या की उपासना का वर्णन करते हैं-

**सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।**
**अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवित् कृतमंगला।।**

(अयोध्या. २०/१६)

राम ने माता कौशल्या के महल में आने पर देखा कि 'नित्य व्रतपरायणा माता कौशल्या रेशमी वस्त्र धारण करके, वेद के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए यज्ञाग्नि में आहुति दे रही थी।'

राम, सीता आदि के द्वारा सन्ध्या-यज्ञ करने का उल्लेख रामायण में अनेक स्थानों पर मिलता है। वनवास जाते हुए श्रीराम, सीता, लक्ष्मण तीनों ने मिलकर सन्ध्या की थी-

**''त्रयः सन्ध्यां समुपासन्त संहिताः''**

(वही, ८७/१९)

श्रीराम इतने सन्ध्या-यज्ञप्रेमी थे कि वन में पर्णशाला का निर्माण किया तो वहाँ यज्ञवेदी का भी निर्माण किया था। भरत जब राम को वापिस लौट आने के लिए मनाने चित्रकूट में गये थे तो देखते हैं कि यज्ञकुण्ड में अग्नि जल रही थी (अयोध्या. ९९/२४)। वहाँ राम के भाइयों ने भी मन्दाकिनी नदी में दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान करके सन्ध्या और होम अनुष्ठित किया था ( वही, १०५/२)।

रामकालीन प्राचीन भारत के सांस्कृतिक प्रभाव, प्रचार एवं प्रसार की झाँकी प्रदर्शित करना उचित प्रतीत हो तो यज्ञ करते हुए रावणपुत्र इन्द्रजित् का दृश्य भी अंकित किया जा सकता है। वह समय-समय पर यज्ञ का अनुष्ठान करता था। युद्ध से पूर्व भी वह मांगलिक यज्ञ करने के लिए अपने निकुम्भला के राजमन्दिर में पहुँचा था।

गोस्वामी तुलसीदास का यह सराहनीय विशेष चिन्तन कहा जायेगा कि उन्होंने अपने काव्य में वीभत्स तथाकथित अश्वमेध यज्ञ के वर्णन की उपेक्षा की है। उचित प्रसंगानुसार उन्होंने पुत्र-प्राप्ति यज्ञ का ही वर्णन किया है (**पुत्रकाम सुभ जग्य करावा**, बाल. १८८/३)। यज्ञ के प्रति यह

उनके शुभभाव का सूचक है। दूसरे शब्दों में कहें, तो उन्होंने अश्वमेध के वर्णन को प्रक्षेप मानकर अस्वीकार कर दिया है। पुत्रेष्टि का यह दृश्य भी अंकित किया जाना चाहिए।

हमारे पूर्वजों ने रामकथा में प्रक्षेप करके एक और बड़ा पाप किया है। राममन्दिर निर्माता यदि साहस करें, तो उसका प्रक्षालन कर सकते हैं। ऋषि वाल्मीकिकृत मूल वर्णनों से ही हमें ज्ञात होता है कि प्रक्षेपकर्त्ताओं ने कुछ पात्रों के चरित्र को हीन दृष्टिकोण के प्रभाव में आकर विद्रूप कर दिया है।

जैसे, वेदों के विद्वान् अद्‌भुत वीरता और प्रतिभा के धनी रामभक्त हनुमान्, सेतुविशेषज्ञ नल और नील, सेनापति जाम्बवान्, वानरराज्य के राजा वालि एवं सुग्रीव आदि वानरवंशी वीरों को परम्परागत रूप में नरपशु वर्णित एवं चित्रित किया जाता है। सीता की रक्षा के लिए बलिदान होनेवाले जटायु और उसके बड़े भाई एवं सीताहर्ता रावण की जानकारी देनेवाले सम्पाति, इन पक्षीसमाज के राजवंशीजनों को नरपक्षी के रूप में वर्णित एवं चित्रित किया जाता है। यह मानव समाज के पूर्वज राम-भक्तों और सहयोगियों का अपमान है। इस विकृत परम्परा को सुधार करके राममन्दिर निर्माता यदि उनका सम्मान लौटा दें, तो यह भी श्रीराम का ही सम्मान होगा और वाल्मीकि की मौलिक भावना की भी रक्षा होगी। इनको मानव रूप में चित्रित करने पर रामकथा की प्रतिष्ठा और तार्किकता बढ़ेगी। कोई रामायण और राम को कल्पित कहने का दु:साहस नहीं कर पायेगा। **- डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

## उठो! जगमगाओ

**पं. भारतेन्द्रनाथ**

गगन सूर्य बनकर नवल प्रात लाओ।
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ।।

घिरी है मही दानवी वृत्तियों से।
भरी मेदिनी दानवी व्यक्तियों से।
घनीभूत है तम गगन में जगत् के।
मनुज आचरण आज मानव न करते।

उठो तुम धरणि का अन्धेरा हटाओ।
अमर ज्योति बनकर उठो! जगमगाओ।।

मुखर हो उठी हैं अनैतिक कथाएँ,
बढ़ी जा रही हैं मनुज की व्यथाएँ,
दिशाओं में उठते रहे हैं करुण स्वर,
चढ़ा है मनुज में कटुक स्वार्थ का ज्वर,

चलो, इन कृतत्वों को अविरल हटाओ।
अमर ज्योति बन कर उठो! जगमगाओ।।

## आभूषण

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चाँदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नादि से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं होता क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है।

**सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास**

## आनन्द

जिस परमात्मा का यह 'ओ३म्' नाम है उसकी कृपा और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ ये हमारे शरीर, मन और आत्मा का विविध दु:ख जोकि अपने [से] दूसरे से होता है, नष्ट हो जावे और हम लोग प्राप्ति से एक-दूसरे के साथ वर्त्त के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि से सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सब को आनन्द में रखें।

**संस्कार विधि**

# अग्नि सूक्त-०४

**प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर**
**लेखिका - सुयशा आर्य**

**प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रहा है। गत अंक में मृत्यु सूक्त का अन्तिम व्याख्यान प्रकाशित हुआ। आप सभी ने उक्त सूक्त को उत्सुकतापूर्वक पढ़ा। आप सबकी इस वेद-जिज्ञासा को ध्यान में रखकर शीघ्र ही यह पुस्तक रूप में भी प्रकाशित कर दिया जायेगा। इस अंक (मार्च प्रथम) से ऋग्वेद के प्रथम सूक्त 'अग्निसूक्त' की व्याख्यान माला प्रारम्भ की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर जी की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा जी ही कर रही हैं। -सम्पादक**

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।**

हम वेदज्ञान की इस गंगा के अन्दर अवगाहन करते हुए वेद के अमृत का पान कर रहे हैं। हम ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त की चर्चा कर रहे हैं और हमने भूमिका के रूप में यह देखा कि वेद के शब्द, वेद के होने से वे केवल सामान्य अर्थ को ही देनेवाले नहीं अपितु इस विशाल सृष्टि की भी व्याख्या करने वाले हैं।

मन्त्र है-

**अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।** इसमें शब्द हैं, **अग्निम् ईळे**, मैं अग्नि की स्तुति करता हूँ। आजकल यदि किसी की स्तुति करनी है तो क्या कहेंगे? जो स्तुति है, उसका सीधा सा अभिप्राय होता है कि उसके अन्दर जो कुछ गुण होता है, हो सकता है उससे हम परिचित हैं। हमारे मन में स्तुति कहने से केवल इतना आता है कि किसी की प्रशंसा कर रहे हैं। यदि यह मान भी लिया जाए कि हम किसी की प्रशंसा को स्तुति कहते हैं तो भी प्रशंसा जो की जा रही है, वह बात (विशेषता) उस वस्तु में होती है या होनी चाहिये। जब हम किसी को कहते हैं, यह बहुत शूरवीर है, यह बहुत कर्मठ है, यह बहुत बुद्धिमान् है, यह धनवान् है, यह विद्वान् है, यह ईमानदार है, यह कर्त्तव्यपरायण है तो हर शब्द वस्तु की योग्यता को बता रहा है और आप उस शब्द को प्रशंसा कह रहे हैं, स्तुति कह रहे हैं। स्तुति और कुछ नहीं है, जो वस्तु का अपना वैशिष्ट्य है, गुण है, अपना स्वरूप है, उसको समझना, उसको जानना ही स्तुति है। अर्थात् जो जानता है, वही तो कहता है। स्तुति कौन करता है, प्रशंसा कौन करता है, जो उसे जानता है। इसलिए स्तुति शब्द बड़े गम्भीर अर्थ को लिए हुए है, केवल कथनमात्र का नहीं है। हम उसे गुणानुवाद कहते हैं, गुणों का कथन करना। कथन कब करेंगे? जब जानते होंगे। यदि हम जानते हैं तो निश्चित रूप से उसका उपयोग भी हमें आता है। उसका प्रयोग भी हम कर सकते हैं, करते हैं। वह हमारे अनुभव में आया है तभी तो हम उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। जब इस तरह से हम विचार करते हैं तो स्तुति करना जो क्रिया है केवल बोलना नहीं है। वे जो गुण हैं उनको उसमें देखना, जानना, पाना उनका उपयोग करना स्तुति है। जो-जो वस्तु में गुण होंगे वह-वह वस्तु की योग्यता होगी और उस-उस को सिद्ध करना, यह वस्तु का उपयोग है।

मन्त्र कहता है- **अग्निम् ईळे**, अग्नि स्तुति करने योग्य है। स्तुति करने का क्या लाभ होगा? आप एक कल्पना करो कि एक कार की खड़े होकर स्तुति करो और कोई दूसरा सुनने वाला नहीं है तो वह स्तुति क्या होगी- तुम बहुत अच्छी हो, चमकीली हो, बहुत तेज चलती हो, आपके अन्दर बहुत स्थान है, यह कहने से क्या होगा? इस गुणकथन का उपयोग जड़ के साथ नहीं हो सकता, इसका उद्देश्य या इसका प्रयोजन, इसके गुण कहने का मतलब निश्चित रूप से कोई चेतन होना चाहिये, जिसके लिए यह कहा गया है और उसके लिये वह उपयोगी होना चाहिये। यदि उसके लाभ का नहीं है, काम का नहीं है तो कहने का क्या अभिप्राय है? इसलिए अग्निम् ईळे- मैं अग्नि की स्तुति तो कर रहा हूँ लेकिन कैसी अग्नि की मैं स्तुति कर

रहा हूँ? शेष मन्त्र इस बात को कह रहा है कि वो कौनसी विशेष बातें हैं जिनसे वह अग्नि हमारे जानने योग्य बन जाता है, हमारे काम का बन जाता है। आगे मन्त्र में जितने भी शब्द हैं-**पुरोहितम्, यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम्** ये सारे के सारे शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में आए हैं। ये अग्नि की विशेषता हैं और इनको देखकर एक बात पता चलेगी कि ये विशेषण किसमें घटते हैं, जड़ में हैं या चेतन में हैं। और इन विशेषणों का जो कथन किया जा रहा है कथन का प्रयोजन भी जड़ है या चेतन है?

ये विशेषण-पुरोहितम्, यज्ञस्य देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम्। पहले हम इनका यदि सामान्य अर्थ देखें। **पुरोहितम्**- हम समाज में एक ऐसे व्यक्ति को पुरोहित कहते हैं जो हमारी धार्मिक क्रियाओं का मार्गदर्शन करता है। हमारी धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न कराने में हमारी सहायता करता है, इसलिये हम उसको पुरोहित कहते हैं। यदि शब्द के अर्थ पर आप विचार करेंगे तो इसका अर्थ बहुत विस्तृत हो जाएगा। पुरोहित शब्द का विश्लेषण करें तो इसका अर्थ होगा- **पुर एनम् दधति**। दधति अर्थात् रखता है। **पुरः** का मतलब है- सामने। कोई व्यक्ति जिसको पहले रखता है, सामने रखता है, आगे रखता है, जिससे पूछता है, वह उसका पुरोहित होता है इसके लिये हम एक शब्द और काम में लेते हैं- **पुरोधा**- जो आगे चलता है, जो नेतृत्व करता है, जिसके मार्गदर्शन में सब किया जाता है। तो वैसे ही जो हमारे धार्मिक क्रिया-कलाप हैं उनको मार्गदर्शन देने के लिये जिस व्यक्ति का हमने चुनाव किया है, उसे हम पुरोहित कहते हैं।

अब एक सोचने की बात है कि यह पुरोहित यदि जलनेवाली अग्नि है तो इसका उपयोग कैसे होगा- जड़ के रूप में होगा या चेतन के रूप में होगा? समझ में आने लायक बात है कि जड़ के रूप में होगा। कोई चीज विशेष है, खास है, मुख्य है, इसलिये उसको पुरोहित कह रहे हैं। अर्थात् उसके बिना कोई काम नहीं हो सकता। जो सब कामों का आधार है, सब कामों को सम्पन्न कराने की चीज है उसकी आवश्यकता सबको पड़ती है, आप उसको पुरोहित कह सकते हैं, कह देते हैं। तो एक प्रकार तो यह होता है और दूसरा प्रकार यह है कि समाज में जो पुरोहित है वह एक चेतन व्यक्ति है, जो हमारे द्वारा नियुक्त है, हमारा मार्गदर्शन करने के लिये हमने उससे प्रार्थना की है, इसलिये हम उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हैं और उससे मार्गदर्शन की अपेक्षा करते हैं, याचना करते हैं। वह जो पुरोहित है यदि वह चेतन है तभी वह हमारा मार्गदर्शक हो सकता है। अचेतन होकर तो उपयोग में आने वाला हो सकता है लेकिन मार्गदर्शक नहीं हो सकता, उपयोग बतानेवाला नहीं हो सकता। यहाँ पर कहा कि वह अग्नि पुरोहित है अर्थात् संसार में मुख्य है। यदि वह जड़ है तो भी बहुत काम की चीज है उसके बिना कुछ नहीं हो सकता। हर काम में आप उसे आगे रखेंगे ही रखेंगे। यदि वह चेतन है फिर तो निश्चित रूप से वह हमारा मार्गदर्शक है और उसके मार्गदर्शन में हम संसार के कामों को करते हैं, कर सकते हैं।

मन्त्र कहता है कि मैं ऐसी अग्नि की उपासना करता हूँ, स्तुति करता हूँ, जिसे जीवन में आगे रखा जाता है। उसकी मुख्यता, मार्गदर्शक क्षमता, योग्यता को बताने के लिये यहाँ पुरोहितम् शब्द का प्रयोग है। अर्थात् वह अग्नि चेतन रूप में हमें आगे ले जानेवाला है। तो जो स्तुति वाचक शब्द आया, वह इसीलिये आया कि उसके अन्दर यह योग्यता, यह गुण, यह सौष्ठव है। अर्थ करते समय हम क्या करेंगे- कि ऐसी वस्तु, जिसमें ये गुण घटित होते हैं, पाए जाते हैं, ऐसी वस्तु को हम अग्नि कहेंगे और उसकी प्रशंसा करेंगे, उपयोग करेंगे, उसकी जानकारी करेंगे, और उसकी जानकारी देंगे।

इसी तरह एक और शब्द इस मन्त्र में आता है- **यज्ञस्य देवम्**। यह शब्द भी उतना ही व्यापक और उतना ही महत्त्वपूर्ण है। वह अग्नि यज्ञ का देवता है, केन्द्र है, मुखिया है। जैसे कोई मुख्य वस्तु सामने रखकर कोई काम किया जाता है, वैसे ही हम इस अग्नि को सामने रखकर काम करते हैं। इसलिए यह अग्नि देवता है। यज्ञ का देवता है अर्थात् यज्ञ के सम्पादन करने का मुख्य कारण है। अब इस यज्ञ का सम्पादन करना है तो हमारे सामने यज्ञ के बहुत सारे अर्थ घूमते हैं। हम यज्ञ के अनेकों अर्थों के प्रयोग पाते हैं। उन सभी स्थानों पर हमें इस यज्ञ

के अनुष्ठान का आधाररूप अग्नि है, उसका बोध होना चाहिये, उसकी प्राप्ति होनी चाहिये, उसकी जानकारी होनी चाहिये। इसलिये यहाँ पर जो बात कही है कि वह अग्नि पुरोहित है और यज्ञ का देव है, दोनों ही शब्द हमारे शास्त्र में महत्त्वपूर्ण हैं। वेद दो नाम दे रहा है और शास्त्र इन दोनों को बहुत विस्तार देते हुए यज्ञ को भी बहुत विस्तार देते हैं और यज्ञ शब्द के अर्थ से भी बहुत विस्तार देते हैं।

तीसरी चीज इस मन्त्र में बताई जा रही है कि इन दोनों के बीच में कोई सम्बन्ध है। यज्ञ साक्षात् देव है या देवों से जुड़ा हुआ है। वह देवों से जुड़ा है तब भी यज्ञस्य देवम् है और स्वयं में देव है तब भी वह यज्ञस्य देवम् है। मन्त्र ने कहा कि वह अग्नि यज्ञ का केन्द्र बिन्दु है। जिस भी कार्य में जो केन्द्र बिन्दु है, हम उसके अन्दर अग्नि के गुण पाते हैं। इसलिये हमें इस बात को समझने में सुविधा होती है। इस तरह से जैसे अग्नि से पुरोहित का, उसी तरह से यज्ञ का भी रूप समझ में आता है।


## वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

**१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ** **पृष्ठ :** २१६ **मूल्य :** १५०

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

**२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा** **पृष्ठ :** ८० **मूल्य :** ३०

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

**३. काल की कसौटी पर** **पृष्ठ :** ३०४ **मूल्य :** २००

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

**४. कहाँ गए वो लोग** **पृष्ठ :** २८८ **मूल्य :** १५०

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

**५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी** **पृष्ठ :** १७४ **मूल्य :** १००

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

## आगामी योग शिविर

## २० जून से २७ जून २०२१

# कुछ तड़प–कुछ झड़प

**प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'**

**मेरी भूल**– मेरे लेख में जाने–अनजाने व मुद्रण–दोष से भी कोई भूल छप जाये तो मुझे उस पर खेद प्रकट करने अथवा क्षमा माँगने से कभी डर नहीं लगता। गत एक तड़प–झड़प में एक पुराने उत्तम ग्रन्थ पर मैंने इस स्तम्भ में कुछ लिखा था। यह ग्रन्थ लाहौर से कभी छपा था। इसकी किसी ने कभी भी चर्चा नहीं की। मुझे एक उदीयमान सुयोग्य आर्य श्री विनोद जी केरलीय ने विदेश से सूचना दी थी। निश्चय ही यह ग्रन्थ स्थायी महत्त्व का है।

अब मेरे पास ग्रन्थ आ चुका है। विनोद जी ने असावधानी से यह बताया था कि इसमें पं. चमूपति जी पर कई लेख हैं। इसमें पण्डित जी पर कुछ तथ्य संक्षेप से अवश्य दिये हैं, परन्तु पण्डित जी पर कोई लेख नहीं। अनजाने में हुई इस भूल पर मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। इसमें प्रकाशित खोजपूर्ण मौलिक लेखों का उद्धार अवश्य किया जावेगा।

**महाशय राजपाल जी का बलिदान**– हिन्दू समाज अपने महापुरुषों, बलिदानियों की और कल्पित भगवानों की ऊँची–ऊँची मूर्तियाँ तो खड़ी करने में बहुत उत्साह दिखाता है, परन्तु अपने बलिदानियों का स्मरण करके उनका अनुचरण करने में कंजूसी दिखाता है। छः अप्रैल सन् १९२९ को लाहौर में एक षड्यन्त्र से एक क्रूर अन्यायी की तीखी छुरी से देश–धर्म की बलिवेदी पर प्राण देनेवाले महाशय राजपाल के बलिदान–पर्व पर इस अभागी जाति ने कभी उनका स्मरण नहीं किया। कोई लेख और गीत नहीं लिखता। महाशय राजपाल का बलिदान अनूठा था।

विधर्मियों ने उस कालखण्ड में दो बड़ी घटिया हृदय दुखानेवाली पुस्तकें प्रकाशित कीं। एक का नाम था, 'कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी' और दूसरी का नाम था, 'उन्नीसवीं सदी का महर्षि'। दूसरी पुस्तक महर्षि दयानन्द की निन्दा में लिखी गई। आर्यसमाज उत्तर–प्रत्युत्तर देने में सदा जागरुक रहा है। श्री महाशय राजपाल जी ने 'यथायोग्य' नीति के अनुसार इन आपत्तिजनक पुस्तकों के उत्तर छपने पर प्रत्युत्तर में 'रंगीला रसूल' नाम की पुस्तिका छपवाई। रासलीला रचाने में हिन्दुओं का उत्साह बस देखे ही बनता है। संघ की शाखाओं में एक भावपूर्ण गीत गाया जाता था–

**निज गौरव को निज वैभव को,**<br>**क्यों हिन्दू बहादुर भूल गये?**<br>**क्यों रास रचाना याद रहा?**<br>**क्यों चक्र चलाना भूल गये?**

रास रचानेवालों ने 'कृष्ण तेरी गीता जलानी पड़ेगी' के उत्तर में एक पंक्ति तक न लिखी। महाशय राजपाल को गीता, श्रीकृष्ण और महर्षि दयानन्द के मान–सम्मान की रक्षा में हँसते–हँसते प्राण देने का गौरव प्राप्त हुआ। वीर सावरकर की कोटि के विचारक, क्रान्तिकारी और इतिहासकार ने अपनी लौह लेखनी से तब एक पठनीय और प्रेरणाप्रद लेख लिखकर इन सब तथ्यों का उल्लेख किया। महामना मदनमोहन जी मालवीय ने उन्हें सच्चा महात्मा बताया। हिन्दू–समाज के छोटे–बड़े सब नेताओं ने फिर चुप्पी ही साध ली।

रामनगर काशी से और दिल्ली से गीता के खण्डन पर पुनर्जन्म सिद्धान्त की धज्जियाँ उड़ानेवाला साहित्य तथा लेख छपे। मैंने गीता प्रेस गोरखपुर जाकर उनसे इन आक्रमणों के उत्तर में छपा साहित्य माँगा। उनको तो इन आक्रमणों की जानकारी तक नहीं थी। उत्तर किसने देना था।

उन्हीं दिनों श्री पं. वेदप्रिय जी कोटा से अजमेर आकर मुझे मिले। बहुत भावनाओं से भरे हृदय से इन आक्रमणों का उत्तर देने को कहा। मैंने कहा, ''आप का आदेश सिर माथे पर। आप धर्मवीर जी से भी बात कर लें।'' प्रो. चन्द्रप्रकाश आर्य जी का भी एक दर्दीला पत्र आ गया। धर्मवीर जी ने अविलम्ब इस प्रहार का प्रतिकार करने के लिये मुझसे लेख लिखने को कहा। वीर राजपाल का पुण्य स्मरण करते हुये मैंने लेख दे दिया। धर्मवीर जी ने सोत्साह लेख छापा। आक्रमण करनेवालों तक पहुँचाया। उन्हें चुप करवाया। **परोपकारी के लेख का विरोधी आजपर्यन्त**

**उत्तर नहीं दे पाया।** हिन्दू समाज फिर चुप रहा। धर्मवीर जी को और इस लेखक को जो धमकियाँ दी गईं, उनका उत्तर दोनों ने परोपकारी में छपवा दिया-

**'रंगा लहू से लेखराम के रस्ता वही हमारा है'**
**राजपाल का लहू है धमनियों में रम रहा।**
**गर्म कर गया सुमेर रक्त जो था जम रहा।।**

आर्यसमाज के कई प्रकाशकों ने बलिदान दिया। वीर राजपाल का बलिदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। अनाथ राजपाल यौवन की चौखट में पहुँचे। आर्यसमाज के दमन-दलन का सरकार ने चक्र चला रखा था। पच्चीस सहस्र की उपस्थिति को सेना ने, पुलिस ने घेर रखा था। लगता था कि आज इस सभा पर गोली-वर्षा हो सकती है। महात्मा मुंशीराम को हथकड़ियाँ लग सकती हैं। महात्मा मुंशीराम की सिंहगर्जना की 'प्रकाश' साप्ताहिक के लिये रिपोर्टिंग (reporting) तब महाशय राजपाल ने ही की। एक भी श्रोता भयभीत होकर सभा से उठकर नहीं गया।

देश के स्वराज्य-संग्राम विषयक साहित्य छापकर राजपाल विपदा में फँसे। उन पर एक पुस्तक के कारण उ.प्र. में अभियोग चलाया गया। महाशय राजपाल के शव को प्राप्त करके शोभायात्रा निकालने के लिये आर्यों पर लाठी-वर्षा की गई। भाई परमानन्द जी की प्राणरक्षा उस दिन कुछ साहसी आर्यवीरों ने जैसे-तैसे करके एक इतिहास रचा। ऋषि मिशन के बलिदानी, अमर धर्मवीर के अनुगामी महाशय राजपाल को हमारा शत-शत नमन।

**स्वामी धर्मानन्द जी चल बसे**- गुरुकुल आबूपर्वत के सिद्धान्तनिष्ठ स्वामी धर्मानन्द जी चल बसे। आपकी सबसे बड़ी देन यह है कि आपने आर्यसमाज को अपना सुयोग्य, कर्मठ तथा परखा उत्तराधिकारी ओमप्रकाश जी के रूप में दिया है। आर्यसमाज के सब वृद्धों के लिये उन्होंने एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। मुझे याद है कि अगली पीढ़ी के निर्माण के लिये मेरे सामने अजमेर में आपने अपने गुरु स्वामी ओमानन्द जी को कितने कड़े शब्दों में भविष्य के लिये सारी शक्ति लगाने के लिये क्या-क्या कहा? उत्तराधिकारी तैयार न करने की भूल से आर्यसमाज की सभायें, संस्थायें निर्बल, निष्फल व निर्जीव सी हो गई हैं।

**पं. श्रीपाल जी आर्य चल बसे**- श्री पं. श्रीपाल जी आर्यकवि, भजनोपदेशक ने उत्तरप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश से बाहर दूर-दूर तक वैदिक धर्म का सोत्साह प्रचार करके बड़ा यश पाया। आर्य सन्तान देकर आर्यसमाज को मालामाल करने का उन्हें गौरव प्राप्त है। उनके गीतों में बड़ी हृदयस्पर्शी शैली से वैदिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है। आर्यसमाज के इतिहास पर, आर्य विद्वानों तथा आर्य महापुरुषों पर जब वह अपनी रचनायें भक्तिभाव से सुनाया करते थे तो श्रोता भावविभोर होकर झूम उठते थे।

उनकी कुछ रचनायें ऐसी थीं जिन्हें बार-बार सुनने पर भी मन नहीं भरता था। वह मधुरभाषी, हँसमुख तथा विनम्र समाज-सेवी थे। अजमेर ऋषि मेला पर प्राय: आया करते थे। उनके गीत आदरपूर्वक करवाये ही जाते थे। एक बार अजमेर में एक युवा ब्रह्मचारी कार्यक्रम का संचालन कर रहे थे। मान्य श्रीपाल जी के भजन होने ही थे। उन्होंने सोचा कि यह ब्रह्मचारी तो उन्हें जानता नहीं। हो सकता है समय न मिले। वेदी पर सभा के सदस्यों में से उस समय तक अकेला मैं ही था। उन्होंने बड़ी विनम्रता से, अत्यन्त प्रेम से मुझे कहा, मुझे भी कुछ समय दिलवा दें। मैंने कहा, सब श्रोता आपको सुनने की ललक रखते हैं। आपने अपनी रचनायें सुनाकर अपनी रसभरी वाणी से समां बाँध दिया। उनके निधन से जो क्षति हुई है उसे पूरा करने में ईश्वर हमारे सहायक हों।

**पं. बस्तीराम जी के ग्राम में**- पानीपत से आर्यवीरों की वेदप्रचार मण्डली बहुत श्रद्धा, भक्ति व जोश से पूज्य पं. बस्तीराम जी आदिकाल के आर्यकवि, भजनोपदेशक तथा शास्त्रार्थ-महारथी के ग्राम में वेद प्रचारार्थ पहुँची। जानेवाले खेड़ी सुलतान को अपनी ऐतिहासिक स्थली मानकर यात्रा करने वहाँ पहुँचे। गाँववालों को भी ऐसा ही लगा कि श्री अभय, अमित, जगदीश जी की टोली ने तीर्थयात्रा मान कर हमारे ग्राम की यात्रा करके इसे महिमामण्डित कर दिया। श्री अभय आर्य ने पं. बस्तीराम के जीवन, साहित्य तथा शास्त्रार्थों के खोजपूर्ण प्रसंग सुनाकर सबको बहुत तृप्त कर दिया।

पं. बस्तीराम जी की रचनाओं में वैदिक धर्म, दर्शन और सिद्धान्त विषयक मौलिक तथा अनूठे तर्क संग्रहीत

करके प्रिंसिपल अभय आर्य एक सुन्दर पठनीय पुस्तक के सृजन में जुट गये हैं। यह अपने विषय की पहली पुस्तक होगी।

**पत्ते पत्ते की कतरण न्यारी**
**तेरे हाथ कतरणी कहीं नहीं**

अबोहर में मेरे एक कृपालु उच्चशिक्षित पौराणिक पण्डित हेतराम जी मूर्त्तिपूजक होते हुए पं. बस्तीराम के इस गीत को ईश्वर की सत्ता तथा स्वरूप पर एक प्यारी देन मानते थे।

**देवी निवेदिता ने कहा था**- स्वामी विवेकानन्द जी को कुछ लोग अपनी राजनीति से विश्वगुरु बताने व बनाने में लगे हैं। स्वामी जी की विदेशी शिष्या निवेदिता देवी ने लखनऊ में एक व्याख्यान में कभी कहा था कि हिन्दू धर्म इस्लाम के बिना अधूरा है और इस्लाम हिन्दू धर्म के बिना अधूरा है। लखनऊ के अंग्रेजीपठित लोगों ने इस पर कोई प्रतिक्रिया न दी कि ऐसा कहकर देवी जी हिन्दू धर्म में क्या कमी मानती हैं और इसमें क्या जोड़ना चाहती हैं। आश्चर्य का विषय है कि स्वामी विवेकानन्द जी को थोड़ा पढ़-सुनकर इस देवी ने तो हिन्दू धर्म दर्शन की व्याख्याकार बनते ही उसका सफल अथवा विफल ऑपरेशन भी कर डाला। 'लव जिहाद' की जो राजनेता चर्चा करते रहते हैं उन्हें समझ लेना चाहिये कि सत्य-असत्य की कोई कसौटी न होने से, कोई स्वत:प्रमाण ग्रन्थ न होने से ही यह दुर्गति हो रही है।

श्रीराम, श्रीकृष्ण महाराज के समय इस्लाम कहाँ था? इस्लाम के बिना वे अधूरे हो गये क्या? करोड़ों रुपये राम मन्दिर के लिये एकत्रित हो रहे हैं। यह धन मन्दिर-निर्माण पर, मूर्तियों पर व्यय होगा। धर्म-प्रचार की कोई ठोस योजना महात्मा आदित्यनाथ मुख्यमन्त्री ने अब तक तो बताई नहीं। परकीय मतों की सारी शक्ति अपने मत के प्रचार में है। श्रीकृष्ण की, मुख्यमन्त्री खट्टर को राजसत्ता प्राप्त करने पर चिन्ता हुई तो वह गीता-गीता की दुहाई देने लग गये। ''**मैं वेदों में सामवेद हूँ।**'' यह श्रीकृष्ण जी ने गीता में अपना परिचय दिया है। गीता की, कृष्ण जी की न सुनते हैं, न मानते हैं और न श्रीकृष्ण को जानते हैं। वेद शब्द ही इनके मुख से किसी ने कभी नहीं सुना तो यह श्रीकृष्ण को क्या समझें। श्रीराम यज्ञ करते रहे और करवाते रहे। उनकी सन्ध्या-उपासना और उनके उपास्य पर तो कभी विचार नहीं होता तो 'जय श्रीराम' कहने से न उद्धार होगा और न सुधार होगा। वानरों की नगरी में चारों वर्णों के व्यवस्थित मकान थे।

क्या इस कथन का प्रमाण चाहिये? वर्ण-व्यवस्था पूँछवाले जीव-जन्तुओं में न सुनी और न पढ़ी, फिर हनुमान की कोटि के महान् और विद्वान् की पूँछ इन लोगों द्वारा कैसे प्रचारित होती है। यह समझ में नहीं आता। लम्बे समय से 'हनुमान चालीसा' के पाठ की तो समाचार-पत्रों व टी.वी. चैनलों में चर्चा होती रहती है। वेद, शास्त्रों, उपनिषदों का नाम न लेने की इन लीडरों ने नीति अपना रखी है। यह आत्मघाती नीति है। कोई कुछ भी कह दे वही हिन्दू धर्म है। आस्था के नाम पर डुबकी लगाना, बहुत बड़ी संख्या में दीपक जलाना यही धर्म है तो याद रखिये आप अपने आपको बचा नहीं सकेंगे। आक्रमण हो रहे हैं, होते रहेंगे। हिन्दू को कौन समझावे-

**बढ़ रहे भगवान् तेरे,**
**घट रही सन्तान तेरी।**

**पं. रुचिराम जी द्वारा एक शुद्धि**- दिल्ली में देश-विभाजन से पूर्व एक बड़े प्रतिष्ठित परिवार का एक युवक एक मुस्लिम युवती के प्रेमपाश में फँसकर धर्मच्युत हो गया। पं. रुचिराम जी लाला रामगोपाल से मिले। कुछ सांकेतिक भाषा में बात करके चले गये। लाला रामगोपाल उस मौलाना (पं. रुचिराम) से क्या जान-पहचान रखते हैं, यह लाला जी के पास बैठा उन्हीं का मित्र न समझ सका। उस बड़े परिवार के युवक के विधर्मी बनने से हिन्दू बहुत निराश व हताश तो थे परन्तु कुछ करने में असमर्थ थे। तभी एक मौलाना उस युवक के घर उसे मोमिन बनने के लिये बधाई देने और ज़कात् (दान) लेने जा पहुँचा। बड़ी प्रभावशाली भाषा में उसके इस्लाम अंगीकार करने पर बहुत कुछ कहा।

वहाँ से चलने से पूर्व उसकी रूपवती मुस्लिम बीवी को एक ग्रन्थ **वैदिक धर्म और इस्लाम सम्बन्धी** भेंट करते हुए कहा, इसे अवश्य पढ़ना, फिर जब मैं आऊँ तो मुझे बताना कि यह ग्रन्थ कैसा लगा?

उसने वह सुरुचिकर ग्रन्थ बड़ी उत्सुकता से पढ़ डाला। ग्रन्थ समाप्त करते ही अपने नये मुसलमान बने पति से बोली कि मैं तो वैदिकधर्मी बनूँगी। वह भी यह सुनकर दंग रह गया। उसने कारण बताने के लिये वह ग्रन्थ आगे कर दिया। वह ग्रन्थ पं. लक्ष्मण जी आर्योपदेशक लिखित था।

कुछ ही दिन में आर्यसमाज ने दोनों को शुद्ध करके आर्यधर्म की दीक्षा दे दी। सज्जनो! रामगोपाल जी चाँदनी चौक क्षेत्र से लोकसभा का चुनाव जीते तो उनके चुनाव को कोर्ट में चुनौती दी गई। लाला जी उस केस में विजयी रहे। उनका चुनाव निरस्त न हुआ। इसका कारण उनके पक्ष में दी गईं गवाहियाँ थीं। उनके गवाहों में वह युवक भी था जिसे पत्नी सहित आर्यो ने शुद्ध किया था। वह मौलाना जो उनके घर जाकर वह ग्रन्थ देकर आया और ज़कात (दान-दक्षिणा) लाया था। वह पूज्य गुरुवर स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का प्यारा शिष्य पं. रुचिराम था।

यह सारी घटना मैंने श्री ओमप्रकाश जी कपड़ेवालों के मुख से सुनी थी। उन्होंने पहले पहल पं. रुचिराम जी को लाला जी से सांकेतिक भाषा में बात करते सुना था। फिर मैंने लाला रामगोपाल जी का साक्षात्कार लिया और संक्षेप से ऊपर की कहानी देने का आज गौरव प्राप्त हो रहा है। आर्यसमाज अपने अतीत को वर्तमान करने में सारी शक्ति लगा दे। इतिहास-प्रदूषण करना और इधर-उधर से सामग्री उठाकर काँट-छाँट करके, बिना स्रोत बताये लिखने से, न धर्म-प्रचार होगा और न ही मान-सम्मान मिल सकेगा, न कोई ऐसे इतिहासज्ञ ही बन सकता है।

**माननीया ज्योत्स्ना जी की ठोस सेवा**- मैं सोचता था कि कोई आर्य विद्वान् इस विषय पर कुछ लिखेगा। जब किसी और का ध्यान इधर नहीं गया तो मैंने समाज के गौरव के लिये इस दायित्व को निभाने की ठानी है। मान्य ज्योत्स्ना जी ने अपने पिता श्री के चरण-चिह्नों पर चलते हुये पुराने, ऐतिहासिक, मौलिक और चुने हुये लेख देने की परम्परा को पुनर्जीवित करके पाठकों की, आर्यसमाज की ठोस सेवा की है व कर रही हैं। इससे आर्यसमाज की पत्रकारिता के इतिहास में इन दिनों परोपकारी की प्रतिष्ठा और बढ़ गई है। इन प्रकाशित किये गये लेखों पर मुझे अभी तो कुछ नहीं कहना, कभी फिर इस विषय पर लिखूँगा।

आज एक बहुत जानदार इस विषय की घटना देता हूँ। मान्या ज्योत्स्ना जी द्वारा नास्तिकता के विषय पर पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय का एक धारदार पुराना लेख दोबारा परोपकारी में प्रकाशित किया गया है। यह लेख वास्तव में डॉ. धर्मवीर जी की खोज है। नास्तिकता के प्रतिवाद अथवा उत्तर में गत ७५ वर्षों में मैंने ऐसा उत्तम कोई दूसरा लेख न पढ़ा और न सुना है। यह लेख पहले 'माधुरी' में छपा था। 'माधुरी' के संचालक थे तो आस्तिक और ब्राह्मण परन्तु पक्के पौराणिक। नास्तिकता पर प्रकाशित लेख का उपयुक्त उत्तर उनमें देने की तो हिम्मत नहीं थी, न कोई काशी में ऐसा विद्वान् उन्हें इस कार्य के लिये दिखाई दिया।

वह आर्यसमाजी तो नहीं थे, परन्तु पूज्य उपाध्यायजी की विद्वत्ता व लेखनी का लोहा खूब मानते थे। उन्होंने पूज्य उपाध्याय जी से इसका उत्तर देने की विनती की। उत्तर छपा तो पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की विद्वत्ता तथा आस्तिकवाद की धूम मच गई। धर्मवीर जी की लेखनी व वाणी के एक प्रशंसक ने वह लेख तथा नास्तिकता पर छपा लेख दोनों सादर धर्मवीर जी को भेंट कर दिये।

**और दक्षिणा मुझे मिल गई**- इसके अतिरिक्त 'माधुरी' की एक फाइल उन्होंने मुझे भिजवा दी या धर्मवीर जी ने दिलवा दी। वह भी आर्यसमाज के लिये उपयोगी है। कुछ लाभ दिया है और भी पहुँचाऊँगा। एक बार किसी ने यह मनगढ़न्त कहानी आर्यसमाज में परोस दी कि श्रद्धेय उपाध्याय जी की लेखमाला 'माधुरी' में प्रकाशित करने के कारण ही मुंशी प्रेमचन्द को पौराणिक संचालकों ने माधुरी के सम्पादक पद से निकाला या हटा दिया। तब मैंने इसी फाइल के प्रमाणों से सिद्ध कर दिया था कि प्रेमचन्द जी का तो 'माधुरी' से सम्बन्ध कभी टूटा ही नहीं। वह स्वेच्छा से इसे छोड़कर गये।

'माधुरी' से कुछ जुड़ी, उपाध्याय जी की [अथवा आर्यसमाज की कहिये] एक अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व की घटना मैं अब अगले अंक में दूँगा। ईश्वर की कृपा से बड़े भाग्य से इतिहास की उस लुप्त कड़ी का प्रामाणिक

वृत्तान्त मुझे मिल गया था अन्यथा भावी पीढ़ियाँ उस इतिहास से वञ्चित ही रह जातीं।

**इतिहास विकृत करने की सनक**- कुछ व्यक्तियों, पार्टियों तथा सरकारों का स्वार्थ ही इतिहास विकृत करने से सिद्ध होता है। वे हर सम्भव ढंग से अपने इस उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। यथा एकबार अंग्रेज सरकार का भेजा गया एक दूत पूज्य पं. भगवद्दत्त जी से मिला और उन्हें यह प्रस्ताव दिया कि सरकार अच्छा पारिश्रमिक देगी यदि वह जाटों का इतिहास लिखकर यह सिद्ध करें कि जाट विदेशी आक्रमणकारियों की सन्तान हैं। पं. भगवद्दत्त जी ने आवेश में आकर उसे लताड़ा कि उसने ऐसा प्रस्ताव देने का साहस ही कैसे किया। ऐसे विषैले इतिहास पहले लिखे जा चुके हैं। मैं आर्यजाति के वीर क्षत्रिय वर्गों राजपूत, जाट, अहीर, गुर्जर को विदेशियों की सन्तान सिद्ध करने का दुष्कर्म नहीं कर सकता। महर्षि के शिष्य ने इसे पाप व देशद्रोह माना। सत्य की हत्या मैं करूँ?

इस घटना का सकेत पण्डित जी ने गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रकाशित एक पुस्तक में भी किया है। पण्डित जी के मुख से भी मैं यह घटना सुनता रहा। यह आर्यसमाज की गौरव निधि है।

इसके विपरीत कुछ लोगों की पेटपूजा ही इसी से होती है। अपनी मनपसन्द का कल्पित इतिहास गढ़ना, इतिहास को सदा विकृत करने में ही अपना जन्म जीवन सार्थक समझते हैं। भाई बालमुकन्द जी के बलिदान तथा उनकी जीवनसङ्गिनी के निधन पर आर्यसमाज के सेवकों ने बहुत कुछ (गद्य-पद्य) दोनों में लिखा है। एक उपहासकार ने यह कहानी गढ़कर परोस दी कि **भाई बालमुकन्द और माता रामरखी दोनों को चिता सजाकर करयाला ग्राम में दाहकर्म किया गया।** उस युग में क्रान्तिकारियों के शव परिवारवालों को सरकार देती ही नहीं थी। वर्षों बाद वीर हरिकिशन, शहीद भगतसिंह आदि के शव भी न दिये। मैं भाई परमानन्द जी, पूज्य महात्मा आनन्द जी के उसी समय के दुर्लभ ऐतिहासिक लेखों तथा अपने खोजपूर्ण पुराने लेखों से तथा कविताओं से इस स्वर्णिम अनूठे इतिहास पर प्रकाश डालूँगा, जिसे पढ़कर आर्यजन झूम उठेंगे। कुछ प्रतीक्षा करें।

---

# एक आहुति अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की नि:शुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

**कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री**

ऐतिहासिक कलम से....

# आर्यसमाज के मन्तव्यों के प्रचार की समस्या और समाधान

**श्री पं. शिवकुमार शास्त्री, पूर्व संसद-सदस्य**

ब्रह्मा से लेके जैमिनि मुनि पर्यन्त स्वीकृत वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार के लिये ऋषि ने जो संगठन बनाया उसका नाम आर्यसमाज है। ऋषि ने इन वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में ही सारी शक्ति जीवनपर्यन्त लगाई। शास्त्रार्थ, साहित्य-सृजन, आर्यसमाज की स्थापना, भिन्न-भिन्न, फर्रुखाबाद, काशी, कासगंज, छलेसर आदि स्थानों पर पाठशालाओं का निर्माण- ये सब प्रयत्न उसी एक शृंखला की कड़ियाँ हैं। हम ऋषि के जीवन-चरित्र में पढ़ते हैं कि इन पाठशालाओं को कहीं तीन वर्ष और कहीं छः वर्ष तक चलाकर, अभीष्ट सिद्ध न होता हुआ देखकर, बन्द कर दिया, क्योंकि इन पाठशालाओं में अध्यापक ऐसे नहीं मिले जिससे छात्र वैदिक धर्मानुयायी बन सकें और इससे भी बढ़कर उसके प्रचारक और प्रसारक बन सकें। ऋषि ने देखा कि यह शक्ति और अर्थ दोनों का अपव्यय है। अत: पाठशालाएँ बन्द कर दीं और यहीं उस मद का जो पैसा था, उसे वेदभाष्य के व्यय की पूर्ति के लिए लगा दिया।

इसका सार यह हुआ कि ऋषि का मुख्य लक्ष्य वैदिक विचारधारा का प्रचार और प्रसार था। वे उन्हीं कामों में अपनी शक्ति लगाने को उद्यत थे, जो काम उसमें साधन के रूप में हों। परोपकारिणी सभा की स्थापना के उद्देश्यों से भी उल्लिखित स्थापना की सुतरां पुष्टि होती है।

ऋषि के विचारों का संवाहक संगठन आर्यसमाज है। अत: उन उद्देश्यों की पूर्ति का दायित्व भी आर्यसमाज पर है। गत एक शताब्दी (यह लेख आर्यसमाज की स्थापना की शताब्दी के अवसर पर वर्ष १९७५ में लिखा गया था तथा यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है) के आर्यसमाज के कार्यकाल की समीक्षा की जावे तो पायेंगे कि आर्यसमाज ने भी ऋषि के उन स्वप्नों को साकार करने के लिये ही अपने समस्त कार्य आरम्भ किये।

कन्याओं के विद्यालय और गुरुकुल, लड़कों के लिए दयानन्द आर्य-स्कूल, कॉलेज और गुरुकुल उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये स्थापित हुए थे। डी.ए.वी. विद्यालयों की स्थापना, विदेशों के लिये आर्यमिशनरी तैयार करने के लिये विशेषरूप से हुई थी। आप इन विद्यालयों की उस समय की पाठविधि उठाकर देखेंगे तो आपको आश्चर्य होगा और पता चलेगा कि संस्थापकों की भावना क्या थी? यही बात लड़कियों की शालाओं और विद्यालयों के लिए भी थी। विचारा गया था कि आर्य वायुमण्डल में अधीन और संरक्षित ये बालाएँ जब गृहस्थ में जावेंगी तो एक आदर्श गृहस्थ बनेगा। जहाँ विधिपूर्वक पंचमहायज्ञ चलेंगे, स्वाहा और स्वधा की ध्वनि गूंजेगी। गुरुकुलों की स्थापना का उद्देश्य इन सबसे उत्कृष्टतर था। वहाँ से तो आशा लगायी गयी थी कि कपिल और कणाद बनेंगे। गुरुकुलों की स्थापना के समय एक आर्य कवि ने लिखा था कि ''आएंगे खत अरब से जिनमें लिखा ये होगा, गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।''

किन्तु देखना यह है कि 'क्या खोया, क्या पाया।' मुझे यदि कटु सत्य कहने के लिये क्षमा किया जाये तो मैं कहूँगा कि कुछ प्रारम्भिक वर्षों को छोड़कर इन संस्थाओं पर आर्यसमाज की शक्ति व्यर्थ नष्ट हुई और इस समय तो ये एक ऐसा निराशाजनक उदाहरण उपस्थित कर रही हैं कि आश्चर्य होता है कि आर्यसमाज इन संस्थाओं को अपनी क्यों कहता है।

**काबाए दिल में दिन-रात बुतों का मजमा।**
**क्या से क्या हो गई अल्लाह के घर की सूरत।।**

हमारी ये अधिकांश संस्थाएँ आर्यसमाज के मूल उद्देश्य की प्राप्ति में साधक तो क्या बाधक हैं। गुजरात में एक पंजाबी पुत्री-पाठशाला एक हाईस्कूल के रूप में थी। उसमें एक ईसाइन मुख्याध्यापिका थी, उसको क्या लगाव हो सकता है आर्यसमाज की विचारधारा से। हमारी इन संस्थाओं की असफलता का मुख्य कारण यह है कि इन संस्थाओं के महान् उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जैसे तपस्वी महात्माओं की आवश्यकता थी, वे हमें नहीं मिले, क्योंकि इन संस्थाओं

के सफल संचालन के लिए मुख्य बात है- 'आचार्य पूर्वरूपम्' जैसा आचार्य होगा वैसा अपवाद को छोड़कर छात्र भी होगा। आचार्य वह सूर्य जिसके चारों ओर संस्था का समस्त नक्षत्रमण्डल घूमता है। इन संस्थाओं को प्रारम्भिक दिनों में जो सफलता मिली उसका कारण भी उस समय के तपोनिष्ठ संचालक ही थे। महात्मा मुंशीराम जी, महात्मा हंसराज और उनके सहयोगी आदर्श गुरु थे जिनके जीवन से प्रत्येक समय शिक्षा मिलती थी। मुझे विदित है कि जब पं. विश्वम्भरनाथ जी को गुरुकुल काँगड़ी में मुख्याधिष्ठाता के पद पर कार्य करने के लिये नियत किया गया तो पण्डित जी ने अपने परिवार को छोड़कर आश्रम में रहना आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा, ''मुझे ब्रह्मचर्य आश्रम में काम करना है, अत: मुझे भी वही सब मर्यादाएँ पालनी चाहिए जो मैं आश्रम के ब्रह्मचारियों से पालन करवाना चाहता हूँ।'' इस एक बात से आपको आभास हो जाएगा कि वे लोग कैसे थे? इसलिये उस समय इन संस्थाओं का उत्पादन भी अच्छा हुआ। डी.ए.वी. कॉलेजों में भी अब से कुछ समय पहले तक एक मंजे और तपे, सरल और सादे महात्मा हंसराज की की प्रेरणा पर चलनेवाले प्रिंसिपल थे। वहाँ भी अब वह क्रम समाप्त हो गया। **अत: अब आर्यसमाज इन संस्थाओं का व्यर्थ बोझ ढो रहा है।** अब तो सरकारी अड़ंगे भी इतने हैं कि आप चाहें तब भी प्रचार की विचारधारा से कुछ नहीं कर पायेंगे।

इसलिये हमें ऋषि के जीवन उदाहरणों से शिक्षा लेकर इन संस्थाओं का मोह छोड़कर तथा इनकी वैधानिक आधार पर जो भी व्यवस्था हो सकती हो करके अपनी पूरी शक्ति प्रचार के काम में लगानी चाहिए। हाँ, प्रचारक की दृष्टि से जहाँ उपयोगिता हो वहाँ चलाएँ, उसमें कोई आपत्ति नहीं। हम देख रहे हैं कि हमारे प्रचार 'केन्द्र' प्रतिनिधि सभाएँ निष्प्राण हो रही हैं। जो आर्यसमाज कभी उत्तर भारत में नगर और उपनगरों की सीमा को लांघकर देहातों पर भी छा गया था, अब सब जगह रिक्तता आ रही है। स्वाध्यायशीलता समाप्त हो रही है और **बिना स्वाध्याय के आर्यसमाज तो जीवित रह नहीं सकता**, क्योंकि यह कोई कीर्तन-मण्डली तो है नहीं जिसके लिये चार तुकबन्दियाँ ही बहुत हो जावें।

आर्यसमाज का प्रचार अवश्य ही एक कठिन कार्य है। इसकी शिक्षाओं को जीवन में ढालना भी असिधारा व्रत है। यहाँ सस्ती मुक्ति नहीं है। किन्तु सफलता में कोई सन्देह भी नहीं है। क्योंकि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, उसे जैसे विचार दिये जायेंगे उसके मस्तिष्क में वैसी ही विचार-तरंगें अवश्य उठेंगी। दिये हुए विचारों का यदि एक वायुमण्डल ही तैयार हो जाए तो उन विचारों को आचार का रूप धारण करने में कोई देर नहीं लगती।

बुराई को छोड़कर अच्छाई को अपनाना तो एक साधारण बात है- हमारे यहाँ तो हमारे पूर्वजों ने विचार देकर सारे समाज को ही मृत्युंजयी बना दिया था। यहाँ चारपाई पर लेटकर मरना कोई जानता ही नहीं था। या तो प्रभु का भजन करते हुए बैठे-बैठे मृत्यु का आलिङ्गन करते थे अथवा शत्रु का मातृभूमि पर आक्रमण होने पर युद्ध में प्राणों का परित्याग करते थे। इसके अतिरिक्त जीवनलीला समाप्त करने का और कोई प्रकार नहीं था। ऋषि पाराशर ने अपनी स्मृति में लिखा है-

**द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।**
**परिव्राड् योगयुक्तश्च रणेचाभिमुखोहत:।**

किन्तु प्रचार में सफलता तब तक नहीं मिलेगी जब तक कि समाज का प्रत्येक विचारशील व्यक्ति स्वयं प्रचारक नहीं बनेगा। वेद ने प्रचार का दायित्व प्रत्येक ज्ञानी पर डाला है।

**'विश्वेदेवासो अधिवोचतान:'** -ऋग्वेद।

हे संसार के सब विद्वानो! तुम अपने ज्ञान का प्रचार करो। ऋषि का वेदभाष्य उपदेशक की महिमा से भरा हुआ पड़ा है। यदि हम मुट्ठीभर आदमियों का काम ही प्रचार करना समझ लें तो इससे कुछ नहीं होगा, क्योंकि वायुमण्डल के बिना दिया हुआ विचार विरोधी विचारधारा से टकराकर समाप्त हो जाएगा, इसलिये अगली शताब्दी के लिये मुख्य कार्य प्रचार होना चाहिये। हाँ, प्रचार की भावना से ओत-प्रोत महानुभाव उसी दृष्टि से शिक्षणालय और अस्पताल भी चला सकते हैं। किन्तु चलें वे तब तक, जब तक कि वे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हों। वे व्यावसायिक केन्द्र बनकर न रह जाये। हम देख रहे हैं कि हम विश्व को आर्य बनाने के नारे ही लगाते रह गए। किन्तु

कल-परसों के अनेक ढोंगी और चरित्रहीन लोग इंग्लैण्ड और अमेरिका में जा धमके और अपनी दुकानें जमा लीं। संसार को देने के लिये और मानवमात्र के कल्याण के लिये जो विचार आर्यसमाज के पास हैं, वे अन्यत्र नहीं हैं। कमी है तो धुन के धनी प्रचारकों की है।

इसके साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि गत पच्चीस-तीस वर्ष से आर्यसमाज के प्रचार के क्षेत्र में प्रतिभासम्पन्न और योग्य व्यक्तियों का आना ही बन्द हो गया है। जो आ रहे हैं 'अनन्यगतिक' हैं और कहीं जमने को स्थान नहीं है इसलिये पड़े हैं। इस स्थिति का विश्लेषण करेंगे तो आप इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि प्रचारकों को जो सामान और सुविधाएँ प्राप्त होनी चाहियें, उनका सर्वथा अभाव रहा है। गत सारी स्थिति की विवेचना के लिये यहाँ स्थान का अभाव है। अत: इसमें परिवर्तन के लिये हमें पिछले व्यवहार का प्रायश्चित करना होगा। हमें यह समझना होगा कि जो व्यक्ति घर-बार छोड़कर रात-रात भर जगते हुए बिस्तर पर सीट के नीचे बैठकर सफर कर रहा है, वह अपनी जीविका के लिये नहीं अपितु एक मिशन की पूर्ति के लिये ऐसा कर रहा है। निश्चित ही वह हमारी अपेक्षा जो हम प्रथम श्रेणी में सोते हुए जाते हैं और यात्रा की समाप्ति पर पुष्पहार लिये झुण्ड के झुण्ड हमारे स्वागत के लिये तैयार खड़े रहते हैं- की अपेक्षा अधिक सम्मान का पात्र है। मुझे ज्ञात है कि आर्यसमाज के एक मान्य विद्वान् जो बाद में संन्यासी भी हो गए थे, जब रेल की प्रथम श्रेणी में यात्रा करते थे तो अनेक पैसे-वाले आर्यसमाजी उनकी आलोचना करते हुए उसे आर्यसमाज के पैसे का दुरुपयोग कहते थे। अब आप देख सकते हैं कि हमारा स्तर कितना आकर्षक रहा है? क्या जिस व्यक्ति ने आजीवन प्रचारक रहकर प्रचार के निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया, वह इस सुविधा का पात्र भी नहीं है? क्या वह व्यवसाय में लगता तो आप की ही तरह कोठियाँ और कार नहीं बना सकता था?

इसलिए मेरा परामर्श है कि एक बार इस परिस्थिति में परिवर्तन लाने के लिये उपदेशकों के वेतन (दक्षिणा) कॉलेज के प्रोफेसरों से भी अच्छे रहने चाहिये। उनकी यात्राओं की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये, उनके बच्चों की शिक्षा की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए। फिर देखिये इधर रुचि रखनेवाले कॉलेज छोड़-छोड़कर आपके केन्द्र में आते हैं कि नहीं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ओर आर्यसमाज ने विचार कर व्यावहारिक पग उठाया तो ये निराशा की बदलियाँ तुरन्त छँट जायेंगी।

मेरे इस प्रस्ताव का यह अभिप्राय सर्वथा नहीं है कि मैं उपदेशकों को कोई आरामतलब और एकान्तिक सुविधावादी बनाना चाहता हूँ। मुझे तो केवल इतना अभिप्रेत है कि उन्हें उनकी आवश्यकता पूर्ति के लिये उचित (सम्मानजनक) दक्षिणा आदि के लिये आश्वस्त कर दिया जाए।

मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि वर्तमान में अनेक लोगों को मेरे ये विचार अटपटे लगेंगे किन्तु आर्यसमाज के हितों के लिये इस ऐतिहासिक अवसर पर मैं अपने इन विचारों का प्रकाशन अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूँ। प्रभु हमें सद्बुद्धि दे कि हम अपने श्रेयस्कर मार्ग को पहचानकर अपना सकें।

## उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

**महर्षि दयानन्द सरस्वती**

# जीवन जीने का वैदिक मार्ग

**कन्हैयालाल आर्य**

मानव जीवन ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मानव के शरीर में विज्ञान और कला का अद्‌भुत कौशल है। यह जगत् सत्य, शिव और सुन्दर है। इसकी सत्यता, सुन्दरता और कल्याणकारिता को बनाये रखने के लिये ईश्वर ने मानव को सृष्टि में भेजा है। ज्ञान के शिखर पर दूसरा कोई प्राणी नहीं पहुँच सकता। यह सामर्थ्य ईश्वर ने मानव को ही दिया है।

जीवन का क्या लक्ष्य है? यह एक गम्भीर प्रश्न है। परमपिता की इस सर्वश्रेष्ठ कृति का कोई न कोई लक्ष्य तो अवश्य उस परमसत्ता ने निर्धारित किया होगा। मानव केवल खाने-पीने, सन्तान-उत्पत्ति, सन्तान पालन-पोषण एवं मर जाने के लिये ही इस धरा पर नहीं आया है। ये सब कार्य तो पक्षी, पशु, कीट जगत्, नभचर, जलचर सब करते हैं, परन्तु मानव जीवन का लक्ष्य कोई महान् ही ईश्वर ने बनाया होगा। उसे असत्य से सत्य की ओर, मृत्यु से मोक्ष की ओर, बाहर से भीतर की ओर, प्रकृति से पुरुष की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर जाना होगा। उसका जीवन अज्ञान, अन्याय, अन्धकार के विरुद्ध एक क्रान्ति है। जीवन से अधिक मूल्यवान् कोई वस्तु नहीं है। इस मूल्यवान् जीवन का कोई तो लक्ष्य अवश्य निर्धारित होगा। इसी विषय पर हमें विचारना है।

जीना एक कला है, यह शाश्वत सत्य है और मानव ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। मानव को इस कला में पारंगत होना चाहिये, किन्तु कितने लोग इस कला के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करते हैं- यह उनके आत्म-चिन्तन, संयम, व्यवहार तथा उसके आस-पास के वातावरण पर निर्भर करता है। जो आत्म-संयमी बना, जिसका चिन्तन शुभ हुआ और लक्ष्य स्थिर रहा, वही व्यक्ति सफलता की सीढ़ी पर सवार होकर अपने जीवन को स्वर्ग तुल्य बना लेता है। किन्तु इसके विपरीत जो अस्थिर प्रकृति का, स्वभाव से उग्र तथा मन से चंचल रहा, वह व्यक्ति नि:सन्देह असफलता के चक्रव्यूह में फँसकर अपने स्वयं के तथा स्वपरिवार के सदस्यों के जीवन को सर्वथा नारकीय बना डालता है।

अस्थिरता दुर्बलता का संकेत है, जीवन में इससे बचना चाहिये। पूर्ण आत्म-संयम ही सफलता का मार्ग प्रशस्त करता है। जो व्यक्ति आत्मसंयमी है वही जीवन में सफल होता है। एक बार की बात है कि श्री एन्सर्थ रॉबर्ट नाम के एक विद्वान् ने बहुत परिश्रम करके एक पाण्डुलिपि तैयार करके रखी। उसकी पत्नी बहुत ईर्ष्यालु व झगड़ालु स्वभाव की थी। उसने अपने पति को पीड़ित करने के लिये उस पाण्डुलिपि को फाड़कर नष्ट कर दिया। रॉबर्ट को जब पता चला तो उसने अपनी पत्नी से कुछ कहे बिना पुन: अत्यधिक परिश्रम करके उस पाण्डुलिपि को सृजित कर लिया। जब उसकी पत्नी को पता चला, वह अपने पति के आत्मसंयम के विषय में जानकर बहुत लज्जित हुई और उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने तुरन्त अपने पति से क्षमायाचना की और भविष्य में ऐसी भूल न करने की प्रतिज्ञा की। उसी आत्मसंयम के कारण पति-पत्नी का कलह समाप्त हो गया। यह तभी सम्भव हो पाया जब रॉबर्ट ने अपने ऊपर पूर्ण आत्मसंयम किया। अत: जीवन में अस्थिरता रूपी दुर्बलता से बचना है तो आत्मसंयम को अपने जीवन का लक्ष्य बनाइये।

इस जीवन में परम सत्य का अनुभव कर लेना अमृत की ओर पदार्पण है। जिसे जीने का सही ढंग आ जाता है, उसके जीवन में आनन्द की झड़ी लग जाती है। इस जीवन में यदि आप अमृत के पात्र नहीं बन पाये तो मृत्यु के पश्चात् हम उसी लोक को प्राप्त होते हैं जिसका हमने इस जीवन में बीज बोया है। इसी जीवन में अपने ही हाथों से हम अपने परलोक का सृजन करते हैं। परमात्मा का दर्शन, उसकी अनुभूति इसी जीवन में होती है। इस जीवन से पृथक् होकर परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। जो इस जीवन में चूक जाता है, वह सदा के लिये चूक जाता है।

हमने इस मरणधर्मा शरीर को ही अपना स्वरूप समझ लिया है और इस मरणधर्मा शरीर को अमर बनाने के

लिये जितने भी प्रयत्न किये गये वे सब निष्फल प्रमाणित हो गये। मानव की यह बुनियादी भूल है। बालू की नींव पर कोई भवन कैसे खड़ा किया जा सकता है। यह हमारा बालपन नहीं तो और क्या है। हम कागज की नाव पर बैठकर सागर को पार करना चाहते हैं जो बिल्कुल भी सम्भव नहीं है।

इस संसार में जीवन जीने के लिये कर्म-प्रवृत्ति आवश्यक है और जीवन की सत्यता को प्राप्त करने के लिये निवृत्ति आवश्यक है। अत: प्रवृत्ति और निवृत्ति का सन्तुलन आवश्यक है। जो व्यक्ति केवल मात्र प्रवृत्ति को ही जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं वे सत्यता से बहुत दूर चले जाते हैं। सत्यता से दूर जाना जीवन को शान्ति और आनन्द से दूर करना है। धर्म का आचरण व्यक्ति की प्रवृत्ति और निवृत्ति में साम्य उत्पन्न करता है। धर्म व्यक्ति को सत्य से जोड़ता है, जीवन को शान्ति और आनन्द प्रदान करता है।

यदि हमें अपने जीवन के लक्ष्य को जानना है तो हमें यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के प्रथम मन्त्र को अपना आदर्श बनाना होगा।

**ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।**

(इदं सर्वम्) यह सब (यत्किञ्च) जो कुछ (जगत्याम्) पृथ्वी पर (जगत्) चराचर वस्तु है (ईशा) ईश्वर से (वास्यम्) आच्छादित है (तेन) उस ईश्वर के (त्यक्तेन) दिये हुए को त्यागपूर्वक (भुञ्जीथा:) भोगकर (कस्यस्विद् धनम्) किसी के भी धन का (मा गृध:) लालच मत कर।

इस मन्त्र का मुख्य उद्देश्य है त्यागपूर्वक भोग। इस वेद-मन्त्र में ईश्वर के दिये हुए पदार्थों के भोग की आज्ञा तो दी है, परन्तु त्यागपूर्वक भोग करने का परामर्श दिया है। मनुष्य विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे, शक्ति प्राप्त करके राज्य प्राप्त करे और उसका उपभोग करे, कृषि-व्यापार तथा अन्य कौशलादि से धन प्राप्त कर उसका उपभोग करे, परन्तु इसके साथ एक शर्त जोड़ दी कि मानव इन प्राप्त भोग पदार्थों को ईश्वर का समझेगा तो उसमें ममत्व न जोड़ सकेगा केवल अपना प्रयोग का अधिकार समझेगा।

आज का मानव संकल्प तथा विकल्पों की ऊँची दीवारों के मध्य स्वयं को कैद करके रखे हुए है। उसे मनोवाञ्छित फल प्राप्त नहीं होता। उसका चित्त अशान्त रहता है और अशान्तचित्त व्यक्ति दु:ख के अथाह सागर में फँसकर अपने ईश्वर प्रदत्त सुखी जीवन को नारकीय बना डालता है। इसी प्रकार जीवन भर इसी ज्वाला में झुलसता हुआ मृत्यु की ओर निरन्तर अग्रसर रहता है और एक दिन सब कुछ यहीं छोड़कर मानव इस संसार से लक्ष्यविहीन होकर विदा हो जाता है। अत: मनुष्य को चाहिये कि वह सर्वप्रथम अपने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करे। चित्त को शान्त रखे। आत्मसंयमी होकर शुभ चिन्तन करे। शुभचिन्तन द्वारा धनोपार्जन करे। शुभ चिन्तन द्वारा प्राप्त किया धन कभी नष्ट नहीं होता, वह सदैव आगे बढ़ता है।

मनुष्य-जीवन को क्रियाशील एवं परिश्रमी बनाना चाहिये। यजुर्वेद ४० वें अध्याय के दूसरे मन्त्र के अनुसार अपने जीवन को व्यतीत करना चाहिये ताकि सौ वर्षों तक सुखपूर्वक रह सकें।

**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।**
**एवं त्वयि नान्येथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।**

यदि व्यक्ति सदैव शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहकर जीवन को व्यतीत करेगा तो उसको जीवन का लक्ष्य 'मोक्ष की प्राप्ति या सदैव दु:खों से छूटना' की प्राप्ति हो जायेगी। प्रत्येक प्रकार के तर्क-वितर्क को समाप्त करके कर्मयोग की नाव बनाकर परोपकार की भावनारूपी पतवार से सम्भालते हुए समभाव रखते हुए जीवन को व्यतीत करना चाहिये। तभी वह इस संसाररूपी सागर के पार हो सकेगा और उसे मानव जीवन का सच्चा लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा।

संसार के समस्त दु:खों का मूल 'अमुक पदार्थ मेरा है' समझने में है, ममत्व में है। दु:ख प्राय: किसी न किसी वस्तु के पृथक् होने से हुआ करता है, परन्तु जब उन्हें स्वयं अपनी इच्छा से छोड़ता है तो दु:ख नहीं होता। एक प्राध्यापक को अपने महाविद्यालय में अनेक वस्तुएँ मेज, कुर्सी, चित्र, पुस्तकें प्रयोग के लिये मिली हैं, परन्तु जब महाविद्यालय का अन्तिम घण्टा बजता है तो वे सब उसको सहर्ष छोड़नी

पड़ती हैं। यदि वह उनको अपने घर ले भी जाना चाहे तो उसे इसकी आज्ञा नहीं मिलेगी और न ही यह नैतिकता होगी अर्थात् उसे सहर्ष उनका त्याग करना होगा। यदि उस प्राध्यापक ने उन वस्तुओं को केवल अपना प्रयोगाधिकार समझा तो उसे उन्हें छोड़ने में कष्ट नहीं होगा, परन्तु यदि इनमें ममता जोड़ लेता है कि 'वस्तुएँ मेरी हैं' तब उसे इन वस्तुओं को छोड़ने में कष्ट अनुभव करना पड़ता है। अर्थात् मनुष्य में जब तक ममता का प्राबल्य रहता है, तब तक वह किसी वस्तु को छोड़ना नहीं चाहता, परन्तु जब उन वस्तुओं में वह अपना प्रयोगाधिकार समझता है, तब प्रयोग समय समाप्त होने पर वह उन्हें स्वयं छोड़ देता है।

परन्तु, एक बड़ी प्रबल शक्ति है जो गिन-गिनकर एक-एक वस्तु प्राणियों से ले लिया करती है और कुछ भी नहीं छोड़ा करती। उस शक्ति का नाम है मृत्यु। मृत्यु आकर पदार्थों को छीनती है, परन्तु ममता के वशीभूत प्राणी उन्हें छोड़ना नहीं चाहता। इसी भावना का नाम मृत्यु-संवेदना है। मृत्यु वास्तव में दुःखप्रद नहीं, सुखप्रद है। जो मनुष्य सांसारिक भोग्य पदार्थों में अपना प्रयोगाधिकार समझता है उसके लिए मृत्यु का समय दुःख का समय नहीं, अपितु सुख और शान्ति के साथ संसार छोड़ने का समय होता है। ऐसे व्यक्ति मृत्यु से भयभीत नहीं होते अपितु मृत्यु का स्वागत किया करते हैं और प्रसन्नता के साथ हँसते-हँसते संसार को छोड़ दिया करते हैं।

कुछ लोगों को यह भ्रम होता है कि यदि मनुष्य सांसारिक पदार्थों-राज्यादि में ममता न जोड़े तो फिर उनकी रक्षा न कर सकेगा, परन्तु यह उनकी भूल है। मनुष्य उन वस्तुओं की भी वैसी ही रक्षा-उपर्युक्त प्राध्यापक की तरह किया करता है, जो उसे प्रयोग के लिये मिली हो, जैसी उनकी करता है जिनमें उसने मेरेपन का नाता जोड़ा हुआ है।

हमारे ऋषियों ने वेदों में मानव जीवन का लक्ष्य 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' को घोषित किया है, इसका अर्थ यह है कि हम धर्मपूर्वक अर्थ (धन) कमायें और धर्मपूर्वक ही कामनाओं की पूर्ति करें, तभी मानव जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे। धर्म की कमाई घर में लाने पर बच्चों के साथ आपका प्रेम रहेगा, परन्तु बच्चों में आसक्ति नहीं होगी। आप अपेक्षा नहीं रखोगे कि वृद्धावस्था में आपकी कोई सेवा करे। कोई सेवा कर देगा तो ठीक है, नहीं तो कोई बात नहीं। यदि आप ने मोह रख लिया है, आसक्ति रख ली, अपेक्षा रख ली, उपेक्षा हो गई तो आपके मन को ठेस पहुँचेगी।

संसार को मूर्खता में नहीं, सोच-समझकर छोड़िये, जैसा कि वेद में कहा है- **उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्**। हे भगवान्! हमें मृत्युरूपी दुःख से छुड़ाना, परन्तु पका करके छुड़ाना, अल्पायु में हम मृत्यु का शिकार न हों, संसार में पर्याप्त अनुभव प्राप्त करें और बड़े होकर समझदारी से इस संसार को छोड़नेवाले बनें। संसार की पीड़ाओं से ऊपर उठनेवाले बनें। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाये, संसार से अपने मोह को कम करते जायें।

वृद्धावस्था में अपने ही लोग सताने लगते हैं। आर्थिक बल, शक्ति, सत्ता, सम्पत्ति सब कुछ ले लेते हैं। उसके पश्चात् भी दुत्कारते हैं। कुछ माँगो तो देंगे कुछ नहीं। कुछ भी बात आप बोलेंगे या पूछेंगे उसका उत्तर सीधे ढंग से नहीं देंगे। वास्तव में इस संसार में अत्यधिक ममत्व ही तो दुःख का कारण है। जिज्ञासा जिसने की, वही बना। जैसे सिद्धार्थ ने वृद्ध व्यक्ति को देखा तो मन में भाव जगे। फिर दूसरे दिन एक शव को देखा तब फिर प्रश्न किया कि ऐसा क्यों हो गया? वृद्ध मन्त्री समझाता है कि हे राजकुमार! प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के अन्तिम दिनों में यही स्थिति होती है। एक दिन सबको कन्धे पर सवार होकर जाना पड़ता है। यह घड़ी हम सबके लिये आयेगी, इसे रोका नहीं जा सकता। ये संसार के मेले ऐसे ही चलते रहेंगे। किसी के रहने और किसी के जाने से कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। संसार इसी प्रकार चलता रहेगा।

बालक मूलशंकर की छोटी बहिन की मृत्यु हो गई। वह बालक मूलशंकर रोया नहीं। लोगों ने उसको पत्थरदिल कहा, परन्तु वह हैरान था कि मृत्यु क्या होती है? वह, मृत्यु किसे कहते हैं, से अनजान था। कुछ दिनों के पश्चात् चाचा की मृत्यु होती है वही मूलशंकर जो बहिन की मृत्यु पर नहीं रोता परन्तु चाचा की मृत्यु पर फूट-फूट कर रोता है। उसे बताया जाता है कि मृत्यु सबको आती है, मृत्यु से

कोई नहीं बच सकता। ''क्या मुझे भी मृत्यु आयेगी?'' उत्तर मिला, ''हॉं, बस उसी दिन निश्चय कर लिया कि इस मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी है। घर छोड़ दिया और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के प्रयास में पूरा जीवन लगा दिया और वह मानव महामानव के रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती के रूप में संसार में अमर हो गया।''

परिवार में जब किसी की मृत्यु होती है तो एक-दो दिन के लिये काम रुकता है, फिर वैसे ही चलने लगता है, उसी तरह से दुकान-व्यापार-नौकरी प्रारम्भ कर दी जाती है, उसी तरह से सारे काम होते रहते हैं। आपके जाने से संसार में कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला। तो फिर मैं और आप जीवन से मोह क्यों कर रहे हैं? व्यक्ति की चिता को देखकर मनुष्य कुछ देर तक स्मरण करता है कि अभी कल तो यह व्यक्ति चल रहा था, बोल रहा था, हमारे साथ था और आज इसका सारा शरीर अग्नि के अर्पित हो गया। थोड़ी देर के लिये श्मशान- वैराग्य जागता है, परन्तु कुछ समय पश्चात् वही व्यक्ति मुख दूसरी ओर करके चला जाता है। संसार के कार्य स्मरण हो आते हैं। दो-तीन दिवस के पश्चात् पूरी कहानी समाप्त होने लग जाती है। फिर वर्ष में एक बार पुण्यतिथि मनाने का दिन आता है, थोड़ी देर के लिये स्मरण किया जाता है। फिर सभी अपनी सुविधा देखने लगते हैं कि कार्यालय भी जाना है, शीघ्रता कर लो। घर में गृहिणी के कहने पर अनाथालय में भोजन कराने की बात आई थी तो गृहपति महोदय कहते हैं कि सेवक के साथ जाकर खाना बाँट आना मुझे कार्यालय में शीघ्र जाना है, यह है हमारे इस भौतिक जीवन की सच्चाई!

पिताजी का चित्र टँगा हुआ है। चित्र देखकर आप उन्हें थोड़ी देर के लिये स्मरण कर लेते हैं, परन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् बातें भूलने लगती हैं, स्मृतियाँ भी कम होती जाती हैं। एक दिन जब रंग-रोगन होता है, तब चित्र उतारा जाता है, स्टोर में रखा जाता है, अचानक शीशा टूट जाता है। फ्रेम बनवाने के लिये किसी के पास समय नहीं है। फिर आप किसके लिये मोह करते हैं? मोह करना मूर्खता है, नासमझी है। आप सोच रहे हैं कि दूसरों के साथ ऐसा हो रहा है, आपके साथ ऐसा नहीं होगा। ऐसा न सोचें। सबके साथ ऐसा ही होता है।

जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाये, अपनी समझ को विकसित करते जाइये। नचिकेता के मन में जो जिज्ञासा, जो प्रश्न उठे, हम सबके मन में भी उठने चाहियें। हम सब के मन में भी एक नचिकेता बैठा हुआ है। जिस दिन उसे हम जाग्रत करना प्रारम्भ कर देंगे, उस दिन संसार में रहना आ जायेगा। मरकर तो संसार छूटेगा ही, हम क्यों न जीते जी छोड़ने में सुख लें। मूर्खता और नासमझी में छोड़ना दु:खदायी होता है। समझकर, परखकर छोड़ना, त्याग करना आनन्दमयी होता है, सुखदायी होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन की घटना है। जब वह मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे, तो अन्तिम समय में उनके एक मित्र उनसे मिलने आये। वह टैगोर से कहने लगे, ''अब अन्तिम समय में तुम परमात्मा से प्रार्थना करो, जिससे इस संसार के नरक में तुम्हें पुन: न आना पड़े और इस आवागमन से तुम्हें छुटकारा मिल जाये।''

इस पर रवीन्द्रनाथ कहने लगे, ''मैं तो मन ही मन परमात्मा से यह प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! तूने यह जगत् कितना सुन्दर रचा है। बहुत सुन्दर पृथिवी, नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फल-फूलों से लदी हुई, सुन्दर शशि और नक्षत्र, इस धरा पर खेलता हुआ सुन्दर मानव-जीवन, किस-किस का, क्या-क्या मैं वर्णन करूँ। मैं तेरी इस अद्‌भुत रचना को देखकर दंग रह गया। मेरा हृदय आनन्द से भर गया। हे स्वामी! आप मुझे यदि योग्य समझें तो मुझे इस देवभूमि पर आने का पुन: अवसर दीजिये। मुझे इस बात का भय है कि कहीं प्रभु मुझे अयोग्य समझकर पुन: यहाँ आने का अवसर ही न दें।''

रवीन्द्रनाथ टैगोर के ये विचार सुनकर वह व्यक्ति दंग रह गया और आगे कुछ न बोल सका। यह है जीवन का सच्चा दर्शन! आइये! आज ही निश्चय करें कि हम इसी जीवन में अपना इतना निर्माण कर लें कि मृत्यु के समय हमारे मुख से महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के वे शब्द निकलें-

''हे ईश्वर! तेरी इच्छा पूर्ण हुई। तूने बड़ी अच्छी लीला की।'' यही जीवन की वास्तविकता है। इसी को लक्ष्य कर अपने जीवन में प्रत्येक क्षण थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन लाते जायें, इसी में हमारे जीवन की सार्थकता है।

# सनातनियों के उत्तरित प्रश्नों पर विहङ्गम दृष्टि

**डॉ. रामप्रकाश वर्णी**

**[ गतांक से आगे ]**

**प्रश्न-१३** स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' में पुराणों को 'विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्य' बताकर संस्कृत साहित्य पर कुठाराघात किया है, परन्तु पुराणों में क्या-क्या झूठ है? यह कहीं भी प्रमाण सहित प्रस्तुत नहीं किया है। (द्र. सत्यार्थप्रकाश समुल्लास-३)।

**उत्तर**- महोदय! ऋषिवर देवदयानन्द ने 'पुराणों' को 'विषसम्पृक्तान्नवत्-त्याज्य' लिखकर न तो संस्कृतसाहित्य पर कुठाराघात ही किया है और न ही कोई अप्रामाणिक कथन किया है। यह कार्य तो सम्पूर्ण पौराणिक जगत् लम्बे समय से करता चला आ रहा है। आपके इस प्रश्न पर तो 'उल्टा चोर कोतवाल को दण्डे' यह लोकोक्ति चरितार्थ होती हुई दृष्ट होती है। क्या आप नहीं जानते कि आप जैसे कुछ संस्कृतज्ञों ने विविध प्रकार के लोभों के वशीभूत होकर 'व्यास' आदि ऋषियों के नाम से अनेक कपोलकल्पित 'पुराणग्रन्थ' बनाकर उनमें 'सुरापान, मांसाहार, व्यभिचार, वेश्यागमन' आदि का विधान करके तथा उसे धर्म का जामा पहनाकर एवं कई ख्यातनामा ऋषियों, महर्षियों को भी उसमें संलिप्त बताकर जनता-जनार्दन को पापपङ्क में धकेलने का दु:साहस पूर्ण कार्य किया है? आपने संस्कृत साहित्य की पीठ पर छुरा भौंक कर जो गहरे घाव दिये हैं, उन्हें प्रबुद्ध जनों की कई पीढ़ियाँ भुला नहीं पायेंगी। आपको यह पढ़ने और पढ़ाने में जरा सी भी शर्म महसूस नहीं हुई- ''लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्नहि तत्र चोदना'' (श्रीमद्भागवतपुराण ११/५/११)।

**न मान्सभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।**
**प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।।** इत्यादि।

आपकी इन घृणित करतूतों को देखकर महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के हृदय में दया का उद्रेक हुआ और उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि 'संस्कृतवाक्यं प्रमाणम्' यह धर्म का लक्षण नहीं है प्रत्युत 'वेदप्रतिपाद्य-प्रयोजनवदर्थो धर्म:' ही धर्म का परिष्कृत लक्षण है। इसका अभिप्राय यह है कि जो वेदाधारित और वेदानुकूल है वही धर्म है, वेदविरुद्ध नहीं। अत: जो वेदविरुद्ध, अनार्ष 'भागवत' आदि अट्ठारह पुराण हैं, वे सत्यासत्य उभय सम्पृक्त होने से विषसम्पृक्त अन्नवत् त्यागने के योग्य ही हैं। वे स्पष्ट लिखते हैं-

**प्र.** क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं है? **उ.**- थोड़ा सत्य तो है, परन्तु उसके साथ बहुत सा असत्य भी है। इससे [वे] 'विषसम्पृक्तान्नवत्त्याज्या:' है। जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है, वैसे ये ग्रन्थ हैं। **प्रश्न**- क्या आप पुराण-इतिहास को नहीं मानते? **उत्तर**- हाँ! मानते हैं, परन्तु सत्य को मानते हैं, मिथ्या को नहीं मानते हैं। **प्रश्न**- कौन सत्य है और कौन मिथ्या है? **उत्तर**- 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति' (आश्वलायन गृह्यसूत्र ३।३।१) यह गृह्यसूत्र का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथ आदि ब्राह्मणग्रन्थ लिख आये उन्हीं के 'इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी' पाँच नाम हैं। 'श्रीमद्भागवत' आदि का 'पुराण' नाम नहीं है।

**प्रश्न**- जो इन त्याज्य ग्रन्थों [१८ पुराणों] में 'सत्य' है उसको [क्रमश:] ग्रहण क्यों नहीं करते?

**उत्तर**- जो-जो उनमें सत्य है, सो-सो 'वेद' आदि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है। वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण हो जाता है। जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से 'सत्य' का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे, इसलिए 'असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यामिति' [अर्थात्] असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ 'सत्य' को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को।

**प्रश्न**- तुम्हारा क्या मत है?

**उत्तर**- 'वेद' अर्थात् जो-जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस-उसका हम यथावत् करना-छोड़ना मानते हैं। जिसलिये वेद हमको मान्य हैं, इसलिये हमारा मत 'वेद' है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष [कर] आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये (सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास-३)। जहाँ तक 'भागवत' प्रभृति पुराण-ग्रन्थों में क्या-क्या झूठ है, वह प्रमाणित करने का प्रश्न है सो महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में 'पठन-पाठन' का विषय होने से वहाँ प्रमाण प्रस्तुत नहीं किये हैं। यतो हि वहाँ इतना बतलाना ही अभीष्ट था कि ये 'भागवत' आदि अट्ठारह पुराण विद्यार्थियों

को पढ़ाने के योग्य नहीं हैं। यदि आपको इन पुराणों में असत्य-मिथ्या-झूठ को देखने की इच्छा है, तो 'सत्यार्थप्रकाश' के एकादश समुल्लास में लिखित 'अष्टादशपुराण-समीक्षा' को देख लें। वहाँ पर आपकी यह हसरत भी पूरी हो जायेगी।

**प्रश्न**- इस विषय में 'महाभारतम्' में तो यह स्पष्ट लिखा है-

**पुराणं मानवोधर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम्।**
**आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः।।**

अर्थात् सभी 'पुराण' मनु के कहे 'धर्म', अङ्गों सहित 'वेद' और 'वैद्यक'=आयुर्वेद ये चारों ग्रन्थ आज्ञासिद्ध हैं, इनको दलीलों से नहीं काटना चाहिये।

**उत्तर**- साधु, साधु पोप जी! साधु, आप 'संस्कृतवाक्यं प्रमाणम्' की ओट में लोगों की अक्ल पर ताला लगाना चाहते हैं और वह भी बड़ी खूबसूरती के साथ, क्या किसी ब्राह्मण के द्वारा संस्कृतभाषा में लिखा हुआ कोई भी श्लोक या वाक्य, ''ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः बाबावाक्यं प्रमाणम्'' प्रमाण हो जायेगा? कब तक लोगों को भ्रमित करके स्वार्थ की रोटियाँ सेकते रहेंगे? श्राद्ध की खीर उड़ाते हुए बहुत दिन हो गये हैं। अब तो आपके झूठ का पर्दा तार-तार होके ही रहेगा। यहाँ पर अभी आपने बड़ी चतुराई से महाभारत के नाम से सन्दर्भशून्य जो श्लोक प्रस्तुत किया है उसका निराकरण निम्नलिखित 'पञ्चतन्त्र' में उल्लिखित श्लोक से बड़ी आसानी से हो जाता है-

**यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।**
**लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति।।**

जिसके पास 'सद्-असद् विवेकिनी (पण्डा) बुद्धि नहीं है, उसका शास्त्र भला क्या उपकार कर सकता है? उसका वह अध्यय न वैसे ही व्यर्थ है जैसे कि किसी दृष्टिबाधित प्रज्ञाचक्षु के लिए 'दर्पण देखना।' आपने महाभारत के नाम से अभी ऊपर जो श्लोक उद्धृत किया है, उसके 'पुराण' पद से भी भागवत आदि कपोलकल्पित अष्टादश पुराणों का ग्रहण अभिप्रेत नहीं है, प्रत्युत वहाँ भी अस्मदुक्त शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थ ही विवक्षित हैं। ये कथित पुराण ग्रन्थ सत्यवती-पुत्र व्यास-विरचित भी नहीं हैं। ये तो समय-समय पर स्वार्थी लोगों ने बनाये हैं। अन्यथा भविष्यपुराण के इस श्लोक की क्या सङ्गति होगी-

**रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फर्वरी।**
**षष्टिश्च सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहरमीदृशम्।।** भवि. पुराण प्रतिसर्ग खं. १३०। स्पष्ट ही पुराण का यह सन्दर्भ भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद लिखा गया है और जो आप ये कह रहे हैं कि ''पुराण, मनु-प्रोक्त धर्म, अंगों के सहित वेद'' और 'वैद्यक'-आयुर्वेद आज्ञासिद्ध हैं, अतः इनमें तर्क-वितर्क करना अनुचित है? यह तो नितान्त हास्यास्पद है। यतो हि आपके द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त श्लोक में 'मीमांसा और न्याय' के 'हेतुवाद' का विरोध नहीं है, प्रत्युत इसमें 'हेत्वाभास' और 'कुतर्क' अर्थात् वेदशास्त्र के विरुद्ध 'मिथ्या-तर्कवाद' का निषेध विवक्षित है। अन्यथा-

**आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्रविरोधिना।**
**यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।।** मनु. १२/१०६।।

इस मनु के श्लोक की क्या गति होगी? यहाँ पर मनुस्मृति के यशस्वी व्याख्याकार 'कुल्लूक भट्ट' की इस टीका को आपने नहीं पढ़ा है?-

''ऋषिदृष्टत्वाद् आर्षं वेदं धर्मोपदेशं च तन्मूलस्मृत्यादिकं यस्तद्विरुद्धेन मीमांसादिन्यायेन विचारयति स धर्मं जानाति न तु मीमांसानभिज्ञः।'' अर्थात् जो व्यक्ति 'वेद' और वेदानुकूल 'स्मृति' आदि ग्रन्थों को 'मीमांसा' तथा 'न्याय' आदि 'वेद-शास्त्र के अविरोधी-तर्क' से विचारता है, सोचता है, वही 'धर्म' को जानता है। कुल्लूक भट्ट के इस प्रमाण रूप कथन के सामने आपका उक्त कथन सर्वथा निस्सार और अविश्वसनीय है। यावता वेद तो स्वयं ही तर्कपूर्वक सम्वाद करने की आज्ञा दे रहे हैं, तद्यथा-

**संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
**देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।**

ऋक् १०।१९२।१।।

इस ऋङ्मन्त्र का आशय यह है- ''हे मनुष्यो! तुम सब धर्म की प्राप्ति के लिए इकट्ठे होकर सम्वाद करो, ताकि 'सत्य' और 'धर्म' को जानकर तुम्हारे मन विज्ञानयुक्त हो जावें। जैसे तुम्हारे अध्यापक=गुरुजन 'धर्म' का सेवन कर रहे हैं वैसा ही तुम भी करो।'' जहाँ तक मनुस्मृति के अग्रलिखित-

**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
**एवच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।**

मनु २।१२।।

श्लोक की प्रामाणिकता की बात है, वहाँ पर यह विज्ञेय

है कि ''धर्मशास्त्र, सदाचार तथा 'आत्मप्रेम' धर्म के जानने में वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक कि वे वेद के विरुद्ध न हों। अन्यथा वे भी अप्रामाणिक ही माने जायेंगे। जैसा कि अधोलिखित वेदादेश से स्पष्ट है-'' ''स्तुता मया वरदा वेदमाता'' (अथर्व. १९।७१।१), 'मन्त्रश्रुत्यं चरामसि' (ऋक् १०।१३४।७), 'वेदं तस्मिन्नन्तरमवदध्म एनम्' (अथर्व. १९।७२।२)।इन मन्त्रांशों का हार्द-भाव यह है- ''मैं सम्पूर्ण धर्म का उपदेश करके वर देनेवाली वेदरूपी माता की स्तुति करता हूँ।'' ''हम वेदमन्त्रों के अनुसार आचरण करते हैं। इसलिये वेदरूपी इस कसौटी को सम्भाल कर रखें। वेदों की इस महत्ता को सामने रखकर ही महर्षि मनु ने यह लिखा है-

**'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'** (मनु. २।६),

**'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'** (वही २।१३)

**'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेय'** (वही २।६)

मनुस्मृति के इन सन्दर्भों का अभिप्राय यह है-

'सम्पूर्ण-वेद' धर्म का मूल है। 'धर्म' को जानने की इच्छा करनेवालों के लिए 'वेद' ही 'परम-प्रमाण' है। इसी वेद का दूसरा नाम 'श्रुति' है।

स्मृतियों की प्रामाणिकता 'मनुस्मृति' के इन वाक्यों से दृष्टव्य है-

**''धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः''** (मनु. २।१०),

**'स्मृतिशीले च तद्विदाम्'** (मनु. २।६),

**''या वेदबाह्याः स्मृतत्यो याश्च काश्च कुदृष्टयः।**
**सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः''**

(मनु. १२।९५)

''उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोऽन्यानि कानिचित्? तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च'' (वही १२।९६)

'मनुस्मृति' के इन सभी श्लोकों का अभिप्राय यह है-

'धर्मशास्त्र' का ही दूसरा नाम 'स्मृति' है। ''वेद के जाननेवालों के लिए यह 'स्मृति' और 'सदाचार' प्रमाण हैं।'' ''जो स्मृतियाँ वेद के विरुद्ध लिखी गयी हैं, वे सब निष्फल हैं क्योंकि वे परलोक में भी अज्ञान प्राप्त करानेवाली हैं?।'' ''वेद के विरुद्ध स्मृतियाँ पैदा होती हैं और नष्ट हो जाती हैं तथा अन्य भी जो कोई वेद के विरुद्ध ग्रन्थ हैं, वे अर्वाक्कालिक= नये होने के कारण निष्फल और झूठ हैं।''

जहाँ तक 'आचार' की बात है, उसके सम्बन्ध में मनु ने बहुत ही स्पष्ट लिखा है- **''स्मृतिशीले च तद् विदाम्''** (मनु. २।६), **''आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च''** (मनु. १।१०८)। इसका तात्पर्य यह है कि ''जो वेद को साङ्गोपाङ्ग रूप में जानकर व्यवहार करते हैं, उनका आचरण ही प्रमाण है।''

'यह आचार=वेदानुकूल व्यवहार ही 'परम-धर्म' है।' 'आत्मप्रेम' और 'युक्ति' के सम्बन्ध में भी मनु ने बहुत ही सुन्दर निर्देश दिया है-

**आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्रविरोधिना।**
**यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः।।**

मनु. १२।१०६।।

इसका आशय यह है कि- ''आर्ष-धर्म का उपदेश जिसका कि मनुष्य वेद-शास्त्र के अनुकूल 'तर्क' से निश्चय करता है उसी की व्यवस्था मनुष्य धर्मवत् है और उसी का युक्तियुक्त आचरण ही प्रमाण है, क्योंकि वस्तुतः वही व्यक्ति धर्म को जानता हे अन्य कोई नहीं।''

इन सभी प्रमाणों से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि 'धर्मशास्त्र सदाचार' और 'आत्मप्रेम' धर्म के जानने में तभी तक प्रमाण हैं जब तक कि वे वेद के अनुकूल हैं। वेद के विरुद्ध होने पर इनकी प्रामाणिकता उपेक्षीणय हो जाती है। यहाँ पर यदि यह कहें कि मनु ने तो सदाचार को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है-

**''तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः।**
**वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।''**

मनु. २।१८।।

अर्थात् ''भिन्न-भिन्न देशों में जो आचार-व्यवहार 'जातीय-परम्परा' से चला आरहा है, वही 'सदाचार' है और वही 'धर्म' है'', तो इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि इस श्लोक को मनुस्मृति अ. २, श्लोक १८० के उस अंश से जोड़कर पढ़ना चाहिए- 'श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च'। जिससे 'श्रुति-स्मृति-अनुकूल' आचार ही सदाचार माना जायेगा, तद्भिन्न नहीं। इसका उपदेश वेदों और मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र में मिलता है, पुराणों में नहीं। इसी कारण वे कुछ 'गुण' और ढेर सारे 'दुर्गुणों' से युक्त होने के कारण विषसम्पृक्त अन्न की तरह त्यागने के योग्य हैं। इसे हम अगले अंक में प्रमाणित करेंगे।

# पञ्चमहायज्ञों का पञ्चकोषों से सम्बन्ध

**जयप्रकाश आर्य**

सृष्टि का कण-कण यज्ञमय है, क्योंकि परमपिता परमात्मा ने इसकी रचना यज्ञ के लिये ही की है। रचनाकार की प्रत्येक रचना यज्ञ का संकेत दे रही है।

''**अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः**''-यजु. २३/६२

(यज्ञ विश्व की नाभि है) कल-कल का नाद करती सरिता का शीतल जल से, पुष्पवाटिका का सुन्दर पुष्प अपनी सुगन्ध से, सूर्य देवता अपनी चमकती हुई रश्मियों से तथा वनौषधि अपने अद्‌भुत गुणों से हमें यज्ञ का सन्देश दे रही हैं। यदि ध्यानपूर्वक विचार करें तो प्राणियों की देह रचना भी यज्ञमय है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पञ्चयज्ञों को ऋषियों ने महायज्ञ की संज्ञा विचारपूर्वक दी है। महर्षि मनु का आदेश है कि

''**पञ्चैतान्यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः**''

(३.७१)

अर्थात् यथाशक्ति कोई गृहस्थ इन पाँच महायज्ञों को करने में कभी प्रमाद न करे। स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती के अनुसार स्वाध्याय को मिलाकर छः महायज्ञ हैं। यह तो निःसंकोच कहा जा सकता कि यज्ञ हमारे जीवन का आधार है। अतः शतपथ ब्राह्मण में कहा है '**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**' अर्थात् यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है, क्योंकि ''**नौर्हवा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्**'' यह अग्निहोत्र स्वर्ग की नौका है। स्वर्ग नौका का समर्थन अथर्व. १९/५५/३४ का मन्त्र कर रहा है कि-

''**प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य याता**''

प्रातः और सायंकाल को अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना से हमें आरोग्य और आनन्द की प्राप्ति होवे। ऐसा महर्षि दयानन्द जी ने पञ्चमहायज्ञ विधि में उल्लेख किया है, वह यज्ञों के (करने से) लाभों का वर्णन करे हुए लिखते हैं कि यज्ञों को विधिपूर्वक एकान्त शान्त व स्वच्छ स्थान पर करने से आपेक्षित लाभ प्राप्त होते हैं। विधि के विषय में यह कहा है कि मन्त्रपाठ अर्थसहित विचारपूर्वक होना चाहिए। यज्ञ करने से पूर्व भगवान् मनु के श्लोक का विचार करते हुए आचरण करना चाहिए-

''**अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।**
**विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।**''

मनु. ५/१०९

अर्थात् शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है। ''परन्तु शरीर की शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सबको अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर-प्राप्ति का एक साधन है।'' -महर्षि दयानन्द

उपरोक्त विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है कि शरीर परमेश्वर-प्राप्ति का साधन है। ''शरीर तीन हैं- एक '**स्थूल**' जो दीखता है। दूसरा पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि। इन सत्रह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भाग हैं एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्मभूतों के अंशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप है। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति-सुख को भोगता है। तीसरा कारण (शरीर) जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है। वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चौथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न जीव होते हैं।''

महर्षि दयानन्द ने-सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास में मुक्ति के क्या-क्या साधन हैं? के उत्तर में पाँच कोशों का वर्णन इस प्रकार किया है। एक 'अन्नमय' जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा 'प्राणमय' जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता, 'अपान' जो बाहर से भीतर आता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचाता, 'उदान' जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खैंचा जाता और बल पराक्रम होता है, 'व्यान' जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा 'मनोमय' जिसमें मन के साथ अहंकार, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पाँच कर्म इन्द्रियाँ हैं। चौथा

'विज्ञानमय' जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ, जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पाँचवाँ 'आनन्दमय कोश' जिसमें प्रीति-प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, आनन्द और साधारण कारणरूप प्रकृति है। ये पाँच कोश कहाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

मानव योनि उभय योनि है इसमें मनुष्य नये कर्म करता है और पूर्वजन्मों के कर्मों के फल भोगता भी है, परन्तु अन्य प्राणी पिछले जन्मों के कर्मों को केवल भोगते हैं, कर्मफल की दृष्टि से नया कर्म करने की क्षमता हाथ और बुद्धि परमात्मा ने उन्हें नहीं दी जो मनुष्यों को प्राप्त है। बुद्धि द्वारा विचार करके कर्म करने के लिये करुणामय परमात्मदेव ने वेदरूपी ज्ञान का भण्डार दिया। जिसमें यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म करने का आदेश मिला है जिसका फल सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति है। सर्वश्रेष्ठ कर्म अग्निहोत्र है, इसका ऊपर वर्णन किया है। अग्निहोत्र के अतिरिक्त ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ जो कुछ ही मिनटों में होने वाले हैं इन्हें महायज्ञ की संज्ञा से ऋषियों ने सुभूषित किया, क्योंकि 'यज्ञ करनेवाला सुख विशेष को प्राप्त करता है- **'स्वर्गकामो यज्ञेत।'**

अब उपरोक्त वर्णित पाँच कोशों का यज्ञों से सम्बन्ध दर्शाते हैं क्योंकि इन्हीं से ही जीव सब प्रकार के कर्म जीवन में करता है। इसलिये सर्वप्रथम ब्रह्मयज्ञ=सन्ध्या व स्वाध्याय का सम्बन्ध 'विज्ञानकोष' से विशेष रूप से है, क्योंकि इसका मुख्य कार्य ज्ञानादि व्यवहार करना है तथा बुद्धि, चित्त एवं ज्ञानेन्द्रियों से इसका विशेष सम्बन्ध है। स्वाध्याय के अनेक लाभ हैं, परन्तु सबसे प्रमुख ज्ञानार्जन है। ज्ञान-प्राप्ति के लिये दयासागर ईश्वर ने हमें वेदरूपी अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं। सर्वप्रथम सबसे बड़ा वेद ऋग्वेद जिसका ऋषि-अग्नि, विषय-ज्ञान और कुल मन्त्रों की संख्या १०,५२२ है। वेद के स्वाध्याय से मनुष्य के 'विज्ञानमय' कोश का विस्तार होगा जिसके परिणामस्वरूप मानव आनन्द के लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

दूसरा महायज्ञ अग्निहोत्र=यज्ञ=हवन है। इसका सम्बन्ध 'अन्नमयकोश' से मुख्य रूप से है। इसके समर्थन में सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ३, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषय विचार, गीता का श्लोक प्रमाण हेतु प्रस्तुत है-

''जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है।'' -सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास

इसका भाव यह है कि अग्निहोत्र से लाखों मनुष्य लाभान्वित होते हैं।

''जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं...वे परस्पर मिलके बादल होके उनसे वृष्टि, वृष्टि से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से धातु, धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है।'' -शत. ५/३/५/१७

**''अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः**
**यज्ञाद्भवतिपर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।''**

गीता

उपरोक्त प्रमाण हमारे मत की पुष्टि करते हैं। अतः अग्निहोत्र से अन्नमयकोश स्वस्थ, सुन्दर व दर्शनीय बनता है कहा भी है **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।'**

**तीसरा महायज्ञ पितृयज्ञ का सम्बन्ध** सर्वाधिक मनोमयकोश से है। यह कोश मन, अहंकार और कर्मेन्द्रियों के साथ ग्रन्थित है। पितरों की सेवा-सुश्रुषा या श्राद्ध व तर्पण तभी हो सकता है जब मन में अच्छे संस्कार (भाव) तथा कर्म करने की शक्ति व साधन हों। सेवा-कार्य कर्मेन्द्रियों द्वारा ही सम्भव है अतः यज्ञ हमें दान, देवपूजा, संगतिकरण की प्रेरणा करते हैं। देवपूजा से अभिप्राय देवताओं की पूजा=सेवा से है। जड़ और चेतन दो प्रकार के देव हैं। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, संकेत दे रहा है माता, पिता और आचार्य देवता हैं- चेतन देव हैं। जड़ देव ३३= ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति=यज्ञ, इन्द्र= बिजुली हैं। कर्मेन्द्रियाँ कोई भी कर्म आत्मायुक्त शरीर से तब ठीक प्रकार से कर सकती हैं जब मनोमयकोश जाग्रत हो, सुदृढ़ हो। कोशों की शक्ति यज्ञ में समाहित है।

चौथा महायज्ञ है अतिथि यज्ञ के द्वारा मानव प्राणमयकोश का विस्तार कर सकता है। प्राणों का अभिप्राय जीवन को ज्ञान के साथ आनन्दमय बनाया जा सकता है। अतिथि-यज्ञ में अतिथि=विद्वान् जो धार्मिक, सत्यवादी और

जितेन्द्रिय हों उनकी सेवा करनी मुख्य कर्म तथा उनके सत्संग से जीवन को धन्य करना होता है। इसमें अथर्ववेद का प्रमाण है १५/११/१,२।।

**तद्यस्यैवं विद्वान्...क्वावात्सीर्व्रात्योदकं।। १।।**

**व्रात्य तर्पयन्तु...यथा ते निकामस्तथास्त्विति।। २।।**

जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और सत्संगपूर्वक विद्यावृद्धि से सदा आनन्द में रहें। स्वस्थ प्राणोंवाला व्यक्ति ही जीवन के आनन्द को प्राप्त कर सकता है, जिससे व्यक्ति विद्वान् अतिथियों के सत्संग से ज्ञान प्राप्त कर संशय-रहित हो जाता है। ऐसा मनुष्य प्राणायाम, उपासना एवं यज्ञ के द्वारा प्राणमयकोष को समृद्ध बना लेता है।

पाँचवाँ बलिवैश्वदेव यज्ञ का आधार '**केवलाघो भवति केवलादि**' अर्थात् जो अकेला खाता है वह पाप करता है। इस यज्ञ के द्वारा मनुष्य आत्मिक सुख की प्राप्ति करता है जो कि आनन्दमयकोश का गुण है। जितना-जितना व्यक्ति यज्ञों के प्रति श्रद्धाभाव रखेगा उसे उतना अधिक लाभ प्रसन्नता, आनन्द, अतिआनन्द की प्राप्ति होगी।

पाँच महायज्ञों का पञ्च कोशों के साथ सम्बन्ध दर्शाते हुए कहना चाहूँगा कि यज्ञ जैसी वैज्ञानिक क्रिया को हम जितनी स्वच्छता, ध्यान, श्रद्धा और विधिपूर्वक एकान्त, शान्त, पर उत्तम सामग्री के साथ करके उससे हमें लाभ प्राप्त होंगे। यह कहना भी उपयुक्त होगा कि समस्त पञ्चमहायज्ञ पञ्चकोशों से माला के मनकों की भाँति जुड़े हैं इसलिए प्रत्येक यज्ञ प्रत्येक कोश से (ज्ञान) सम्बन्धित है। अत: लेखक का मुख्य हेतु यज्ञों में श्रद्धा उत्पन्न करना है। जिससे हम महर्षि के मिशन से ईमानदारी से जुड़ सकें। यदि हम सब देवयज्ञ व ब्रह्मयज्ञ का मूल '**इदन्न मम**' तथा '**द्वेष्टि यं वयं**' को जीवन का मूलमन्त्र बना लें तो हम सबका कल्याण होगा।

**पलवल, हरियाणा।**

# आर्यजगत् के समाचार

**मानव रत्न सम्मान से अलंकृत**- आत्मशुद्धि आश्रम बहादुरगढ़ में शहीदी दिवस पर आयोजित कार्यक्रम भजन संध्या के अवसर पर वेद प्रचारिणी समिति झज्जर के अध्यक्ष पं. रमेशचन्द्र वैदिक को दिल्ली से प्रकाशित अध्यात्म पथ पत्रिका के सम्पादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री व संरक्षक पद्मश्री श्यामसिंह शशि द्वारा सामाजिक सेवाओं के लिए विशिष्ट मानव रत्न सम्मान से अलंकृत किया गया। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के उपाध्यक्ष व परोपकारिणी सभा अजमेर के महामन्त्री श्री कन्हैयालाल आर्य, आश्रम अधिष्ठाता आचार्य विक्रम देव, सत्यपाल वत्स उपमन्त्री, स्वामी रामानन्द, स्वामी ओममुनि, मास्टर ब्रह्मजीतसिंह, कर्नल राजेन्द्र सिंह, रामवीर, अनन्त महता, सुविख्यात भजन गायिका अंजली आर्या, आश्रम के ब्रह्मचारी व बड़ी संख्या में महिला-पुरुष उपस्थित थे।

### वैवाहिक

**१६. वधू चाहिये**- जन्मतिथि ०८/०२/१९९५, कद- ५.९ फीट, वर्ण-गोरा, शिक्षा-एम.ए., एम.एम.वी. (मोटर मैकेनिकल व्हीकल) में कार्यरत आर्यसमाजी परिवार की, अध्यात्म में रुचि रखने वाली कन्या चाहिए। **सम्पर्क- ०९३५१३१४४२१**

### चुनाव समाचार

**१८. महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा** के पदाधिकारियों और ट्रस्टियों की विशेष बैठक दिनांक १४.०२.२०२१ को हुई जिसमें आर्यरत्न डॉ. पूनम सूरी को सर्वसम्मति से ट्रस्ट का प्रधान निर्वाचित किया गया। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर श्री अजय सूरी (महासचिव, डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी) तथा श्री महेश वेलाणी (भुज) को ट्रस्टी मनोनीत किया गया।

## विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

# संस्था-समाचार

## ( ०१ से ३१ मार्च २०२१ )

**यज्ञ-प्रवचन :** परोपकारिणी सभा द्वारा सञ्चालित ऋषि-उद्यान में यज्ञ-प्रवचन नित्यप्रति निर्बाधित रूप से सम्पन्न किया जाता है। प्रवचन के क्रम में विद्वानों के अनुभवों को उपस्थित श्रोता एवं परोपकारिणी सभा के निजी फेसबुक-यूट्यूब पेज से जुड़े श्रोता नित्य लाभ लेते हैं। इस क्रम में भ्राता सोमेश जी के व्याख्यान हुए, जिसमें उन्होंने 'इतिहास' विषय पर व्याख्यान दिया। अपने व्याख्यान में उन्होंने भारतीय इतिहासकारों एवं पाश्चात्य इतिहासकारों के मन्तव्यों को स्पष्ट करते हुए उनकी समीक्षा की तथा 'वेदों में इतिहास है या नहीं' इस प्रश्न की भी विस्तृत विवेचना की। छः मार्च पं. लेखराम बलिदान दिवस पर भी भ्राता सोमेश जी का उद्बोधन हुआ। पं. लेखराम के जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उन्होंने उनके जीवन से मिलने वाली शिक्षाओं द्वारा हमारा मार्गदर्शन किया तथा उनके बलिदान से सम्बन्धित एक कविता भी पढ़ी।

आचार्य श्री घनश्याम जी के भी कई व्याख्यान हुए जिसमें उन्होंने कई दृष्टान्त, काव्य आदि के माध्यम से वेदमन्त्रों से मिलनेवाली सरल एवं गम्भीर शिक्षाओं को समझाया। २३ मार्च शहीद दिवस पर भी आचार्य जी का उद्बोधन हुआ। शहीद भगतसिंह, सुखदेव एवं राजगुरु तीनों के जीवन से जुड़ी कुछ बातें एवं अन्य क्रान्तिकारी जो भारत के स्वाधीनता-संग्राम में शहीद हो गये उनकी विशेषताओं को बताते हुए आचार्य जी ने साहसी, स्वावलम्बी आदि बनने की प्रेरणा दी।

भ्राता प्रभाकर जी ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास (सृष्टि उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय) का अत्यन्त सरल शैली से अध्यापन किया तथा उसके दार्शनिक पहलुओं को स्पष्ट किया।

**वसन्तोत्सव :** भारतीय संस्कृति के महापर्वों में वसन्तोत्सव का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जोकि प्रकृति सिद्ध है। सम्पूर्ण भारतवर्ष एवं भारतीय संस्कृति से संयुक्त व्यक्ति इस महापर्व को हर्षोल्लास के साथ मनाता है। ऋषि उद्यान में भी वसन्तोत्सव को आदर्श रूप में मनाया गया। यज्ञ में वासन्तीय नवसस्येष्टि की आहुतियाँ, सामग्री में नई फसल गेहूँ, जौ आदि को मिलाकर दी गयी। भ्राता प्रभाकर जी एवं आचार्य श्री घनश्याम जी के विशेष उद्बोधन हुए जिसमें उन्होंने होली के विशेष महत्त्व को बताया। ब्र. सुभाष एवं ब्र. नवनीत ने संयुक्त रूप से होली का गीत गाया, पश्चात् सबने एक-दूसरे को गुलाल लगाकर होली की शुभकामनाएँ प्रकट कीं।

**ऋषि उद्यान के भवनों का जीर्णोद्धार :** अगस्त २०२० से निरन्तर ऋषि उद्यान में भवनों की जीर्णावस्था को संस्कारित करने का कार्य चल रहा है। अब तक अनुसन्धान भवन, लेखराम अतिथिशाला भवन एवं यज्ञशाला का कार्य पूर्ण हो चुका है तथा योगमन्दिर भवन एवं गोशाला के भवन में कार्य प्रगति पर है। **- ब्र. रोहित**

---

## मातृ भक्ति

वैशाली वसुधा सिंह चौहान

ए माँ तुम्हारे चरणों में, मैं दो जहाँ को वार दूँ।
हरदम तू मेरे साथ है, तूझे किस तरह बिसार दूँ।।

उपकार तेरे इतने हैं, इनको गिनाऊँ कैसे माँ?
तू ही बता दे मैं तेरे, ऋण को चुकाऊँ कैसे माँ?

तू सद्गुणों की खान है और सबसे तू महान् है।
तेरे बिना मैं कुछ नहीं, तू ही मेरा जहान है।।

छाया सदा तेरी रहे, ईश्वर से है यह प्रार्थना।
करते हैं तेरे प्यार की, देवता भी कामना।।

तू ही हृदय की वेदना और तू ही है संवेदना।
ममता की है तू मूर्ति, हृदय को तेरी चाहना।।

# परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

| **पुस्तक का नाम** | **वास्तविक मूल्य रुपये** | **छूट के साथ मूल्य रुपये** |
|---|---|---|
| अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग) | ५०० | ३५० |
| महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग) | ८०० | ५०० |
| कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग) | ९५० | ६०० |
| डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग) | ५०० | २५० |
| पण्डित आत्माराम अमृतसरी | १०० | ७० |
| महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ | १५० | १०० |
| वेद पथ के पथिक | २०० | १०० |
| महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र | २०० | १०० |
| स्तुतामया वरदा वेदमाता | १०० | ७० |

**यजुर्वेद भाष्य ( महर्षि दयानन्द सरस्वती ) पृष्ठ संख्या- २११९७, चारों भागों का मूल्य = १३००/-**
**डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-**

**पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:- दूरभाष - 0145-2460120**

**वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु**

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

**IFSC - PUNB0000800**

---

## लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है।

**-सम्पादक**

---

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

**-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७**

# संस्था की ओर से....

## क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?

## तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

***अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।***

## अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

## परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि **''कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।''** यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

**भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।**

## गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास **नि:शुल्क** है।

**प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-**

**आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।**

**दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०**

## परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

**खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)**

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

**IFSC-SBIN0007959**

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

**IFSC-IBKL0000091** email : psabhaa@gmail.com

# दानदाताओं की सूची

### अतिथि यज्ञ के होता

### ( १६ से ३१ मार्च २०२१ तक )

१. श्रीमती मिथलेश सत्येन्द्र आर्य, बैंगलोर २. कु. उन्नति वर्मा, सोजत सिटी ३. श्री कपिल वर्मा, सोजत सिटी ४. श्रीमती अमृत पॉल, नई दिल्ली ५. श्रीमती सरोज वर्मा, अजमेर ६. डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली, अजमेर ७. श्री भूरालाल, शाहपुरा ८. आर्यसमाज चांपानेरी, अजमेर ९. श्री अमित सुमन माहेश्वरी, ठाणे १०. ब्रिगेडियर विजय कुमार आत्रेय, नोएडा ११. श्री सुभाषचन्द कथूरिया, हिसार १२. श्री गौरवसिंह, मुजफ्फरनगर १३. श्री शीलादित्य, दिल्ली १४. श्री जितेन्द्र यादव, रिवाड़ी १५. श्रीमती कैलाश गुप्ता, ज्वालापुर १६. श्रीमती विमला गुप्ता, ज्वालापुर १७. श्रीमती उषा मरवाह, दिल्ली, १८. मेजर रतनसिंह यादव, जखाला रेवाड़ी।

# गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

### ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

### ( १६ से ३१ मार्च २०२१ तक )

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री गुलशन स्वरूप कालरा, पंचकुला ३. श्री खीलाराम बंसल, किशनगढ़ ४. श्री भँवरसिंह शेखावत, अजमेर ५. श्री राजा चौरे, इटारसी ६. श्रीमती सुरेखा चौरे, इटारसी ७. श्री अमित चौरे, इटारसी ८. श्री तरुण चौरे, इटारसी ९. श्रीमती संजना शर्मा, अजमेर १०. श्री दामानी गुप्ता एण्ड कं., कोलकाता ११. श्रीमती प्रेम दुग्गल, सूरत।

### अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्रीमती नीलिमा बेदी, अजमेर ३. श्रीमती सरोज वर्मा, अजमेर ४. श्री श्रीमती अरुणा गौड़, अजमेर ५. आर्यसमाज सैक्टर १२, पंचकुला ६. श्री सौजन्य गोयल, मुजफ्फरनगर ७. श्रीमती सूर्या कुमारी, दिल्ली ८. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद ९. श्री कृष्ण कुमार साहू, बिलासपुर १०. श्रीमती विमला गुप्ता, ज्वालापुर।

---

# विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं।

**( व्यवहार भानु )**

# 'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें ( इससे अधिक कितनी भी ) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

| | | |
|---|---|---|
| न्यूनतम | २० प्रतियाँ | ३०००/- रु. |
| | ३० प्रतियाँ | ४५००/- रु. |
| | ५० प्रतियाँ | ७५००/- रु. |
| | १०० प्रतियाँ | १५०००/- रु. |
| | ५०० प्रतियाँ | ७५०००/- रु. |
| | १००० प्रतियाँ | १,५०,०००/- रु. |

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

**मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर**

---

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

**-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४**